प्रस्तुत पुस्तक रीति की विवशता, आकुलता और दमित उत्साह की एक विद्रोहात्मक कथा है। रीति अपने सम्पूर्ण हृदय से पुकारना चाहती है—सहानुभूति के लिए, प्यार के लिए, संतोष के लिए, मगर नहीं पुकारती। कोई फल नहीं होगा···। उसकी आंखों में आंसू छलछला आते हैं। उसकी फीकी आंखें धुंधले आंसुओं से भरकर और भी धुंधली हो जाती हैं। वह रोती नहीं, चीखती नहीं, सिर्फ गहरी सिसकियां लेती है। मगर उसकी पीड़ा कौन समझ सकता है।

क्रूर यन्त्रणाओं के स्मृति-चित्र रीति को कचोटते हैं—उसकी दोनों आंखें जैसे मिरच भरकर सी दी गई हैं। असह्य पीड़ा से वह छटपटा-छटपटा कर रह जाती है। वह रोती है, कलपती है, चिल्लाती है···

वातावरण के सशक्त चित्रणों से यह कथा पूरित है—मौत का-सा सन्नाटा सर्वत्र छाया हुआ है। तमाम लोग इधर-उधर घूम रहे हैं—मुर्दों की तरह। तमाम लोग फुसफुसाकर बात कर रहे हैं—रूहों की तरह···। उसकी आंखों पर बंधी हुई पट्टी खोली जा रही है, कड़ी उंगलियों के नुकीले नाखूनों से उसकी पलकें फैलाई जा रही हैं। उसकी आंख के भीतर रूई लगाई जा रही है—एक मुर्दा रो पड़ता है!

रीति की शारीरिक अक्षमता, पीड़ा, दुःख, अपमान, तिरस्कार, उपेक्षा और घृणा के प्रतिक्रियात्मक मानसिक विद्रोह की यह तरल, करुण और मार्मिक कथा आपके हृदय को छू लेगी।

अन्धी दृष्टि
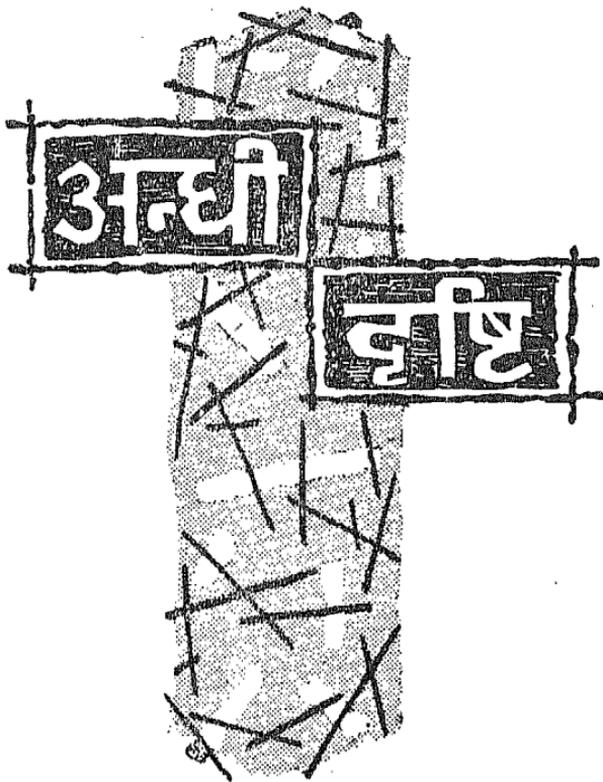
प्रतापनारायण टंडन

राजपाल एण्ड सन्ज़, दिल्ली

मूल्य	:	दो रुपये
प्रथम संस्करण	:	मई, १९६०
प्रकाशक	:	राजपाल एण्ड सन्ज़, दिल्ली
मुद्रक	:	युगान्तर प्रेस, दिल्ली

ज्येष्ठ भ्राता डॉ० प्रेमनारायण टंडन को

१

वह संसार में आ गई है। हर वक्त अपने मुंह से 'कंओ-कंओ' की आवाज़ निकालती रहती है।

घर की बड़ी-बूढ़ी औरतें खिसियानी हंसी हंसकर कहती हैं, 'हमारे घर तो लक्ष्मी जी आई हैं।'

और लक्ष्मी जी को अभी से इस बात का पता है कि उनकी मां कौन है। उनके बगल में मां का लेटे रहना ज़रूरी है। वह फौरन इस बात को जान लेती हैं कि किस वक्त कौन उन्हें झुठलाने की कोशिश कर रहा है। दादी उन्हें बहलाने की असफल चेष्टा करने के बाद झुंझलाकर कहती हैं, 'बड़ी घुन्नी है, मरी !'

बुआ ने अभी से उसको रीति पुकारना शुरू कर दिया, 'रीति ! इसका नाम रीति ही ठीक है।'

रीति को अभी दो ही बातें पसन्द हैं, या तो मां के स्तनों में मुंह लगाए रहना और या दूध में भीगी हुई कपड़े की बत्ती चूसना।

पण्डित जी आते हैं। चौके में से पत्थर का चकला मांज-धोकर लाया जाता है। एक कटोरी में पिसा हुआ आटा और थाली में रोली, चावल, सुपारी, मौली, बताशे आदि लाकर रखे जाते हैं। एक गिलसिया में पानी और एक पान लाया जाता है।

पण्डित जी चकले पर आटे की लकीरों से कुण्डली बनाते हैं। रेखाएं खिचती हैं, लोटे के ऊपर दिउली में एक ज्योति जलाकर रख दी जाती है।

'कैसे ग्रह हैं ?' रीति की दादी पूछती हैं।

'अच्छे हैं।' पण्डित जी कुण्डली देखते हुए कहते हैं, 'कन्या भाग्य-वती होगी। लेकिन…'

पण्डित जी के माथे पर बल पड़ जाते हैं। दादी पूछती हैं, 'क्यों, क्या बात है ?'

'लड़की मूलों में हुई है।' पण्डित जी हिसाब लगाकर कहते हैं।

'वाह, पण्डित जी !' दादी की त्योरियां चढ़ जाती हैं, 'तुमसे कह दिया था पिछली बार कि अगर कोई बच्चा मूलों में हुआ करे, तो इस बात का जिकर ही मत किया करो।'

'लेकिन आप चाहें तो…'

'मैं अब वहम का काम थोड़े ही करूंगी।' दादी निश्चयात्मक स्वर में कहती हैं, 'अब तो मूलों की शान्ति करानी ही पड़ेगी। न बताते तुम तो बात दूसरी थी।'

पण्डित जी अपराधी की भांति बैठे रहते हैं। दादी को मूल-शांति की पूजा के सामान की सूची बनाकर दे देते हैं। चलते समय उनके हाथ पर सवा रुपया दक्षिणा का रख दिया जाता है।

रीति सारे दिन अपने आसपास के वातावरण को समझने की कोशिश करती है। तरह-तरह की आवाजें, शोर-गुल, बातचीत… और फिर रात में दूर पर कोई चीज चमकती हुई दिखाई देती है। क्या है वह, कैसे चमकती है वह, दिन में नहीं चमकती। सिर्फ रात में, रात भर, चमकीली। दिन भर उसकी आंखें मानो उसे ढूंढ़ती

रहती हैं, पर वह नहीं दिखाई देती। सारा दिन कुछ अजीब-सा लगता है, जैसे शून्य में से आवाज़ें आती हों, अशरीरी प्राणी बोलते हों।

मां उसका सर्वस्व है। उसे अपनी छाती में छिपा लेना चाहती है, कलेजे के भीतर बैठा लेना चाहती है। वह किलकती है। मां भी किलकारी मारकर हंसती है, पुचकारती है, उसकी मिची हुई हथेली में अपनी उंगली फंसाकर उसे खोलना चाहती है, उसकी बलइयां लेती है।

पल भर के लिए वह कंओं-कंओं बन्द कर देती है। अपनी मां का चेहरा देखना चाहती है जैसे, लेकिन केवल उसके स्पर्श का ही अनुभव करके रह जाती है; होंठों की फुसफुसाहट को छू पाती हैं, उसकी आंखें—उसकी आंखों की फीकी पुतलियां नाचने लगती हैं—चारों तरफ, एक गोल घेरे में। क्या है सब तरफ, कैसी है उसकी मां, उसकी मां!

दिन भर में पचासों औरतें आती-जाती रहती हैं और अपने-अपने हृदय के उद्‌गार प्रकट करती रहती हैं—

—'कैसी चंचल है!'

—'बिलकुल मेम का बच्चा लगे है।'

—'कैसा लाल-लाल मुंह है।'

—'नकशाना अच्छा है।'

—'बाल तो झबरी बिल्ली जैसे हैं।' आदि।

रीति के जन्म जैसी घटना घर में घटित हो जाए और बुआ गीत न गाए-गवाए!

'लल्ली के धोखे मत रहियो मोरे राजा।'

मेरे तो लल्ला हुआ!

ढोलक पिटने लगती है, मंजीरे झनझनाते हैं। तमाम स्त्री-कंठों से एक मिली-जुली, कहीं सुरीली, कहीं बेसुरी ग्रावाज़ गूंजने लगती है। घुंघरू और पायल की रुनझुन के साथ फिल्मी गानों, सोहर और लोरियों के ताल....

सवेरे तड़के से ही पूजा का आयोजन होने लगता है। फर्श को झाड़ू लगाने के बाद धोया जाता है। पटरे बिछाए जाते हैं। सात मुंह वाला एक करुवा लाया जाता है। एक कटोरी में तेल रखा जाता है। पूरे विधि-विधान से पूजा की जाती है।

'मैंने कह दिया कि मुझे यह सब झमेला पसन्द नहीं।' रीति के पापा की रूठी हुई आवाज़ सुनाई पड़ती है।

'बेटा! थोड़ी देर की तो बात है। ज़रा-सी तो पूजा है।' दादी मनाती हैं।

'मैंने कह दिया, मुझे पूजा-वूजा कुछ नहीं करनी है। तुम लोग जो मन में आए सो करो।'

'नहीं बेटा। वहम की बात है।'

काफी समझाने के बाद पापा पटरे पर आकर बैठ जाते हैं। थोड़े पूजन-विधान के पश्चात् उन्हें उसी सात मुंह वाले करुवे से स्नान कराया जाता है।

'लीजिए! अब आप इस तेल में बच्चे का मुंह देखिए'—पण्डित जी कडुवे तेल की भरी हुई गिलसिया उसके सामने करके पूछते हैं, 'दिखाई पड़ता है?'

'हां।'

'अब आप कन्या का मुंह देख सकते हैं।'

थोड़ी देर बाद पूजन समाप्त हो जाता है और पंडित जी दक्षिणा लेकर चले जाते हैं।

दिन बीत रहे हैं। रीति अब किन्हीं-किन्हीं आवाजों को पहचानने भी लगी है, पर उसकी पुतलियों का धुंधलापन उसे 'कंओ-कंओ' करके रोने को विवश कर देता है। वह सब कुछ, सारा कुछ देखना चाहती है, लेकिन अन्धकार....। उसकी आंखें नाचकर रह जाती हैं।

'इसकी आंखें कैसी हैं!' एक दिन कोई कहता है।

सारी दुनिया की आवाजें जैसे उसके बदन को छेद रही हैं...

'पुतलियां कुछ छोटी हैं।' दूसरी आवाज आती है।

'लेकिन यह पुतलियां क्यों नचाती है?' तीसरी औरत पूछती है।

उसकी पुतलियां एक गोल घेरे में नाच रही हैं। जैसे सब कुछ नाच रहा है, सब कुछ।

उसके कान बहुत तेज़ हैं। हर वक्त, हर आवाज पर लगे रहते हैं।

'खट्-खट्-खट्-खट् !' लगता है किसीके पैरों के जूतों की आवाज़ है। कोई आकर खड़ा हुआ है। कुछ फुसफुसाहट हो रही है।

'सो रही हो ?' उसके कानों में एक नई आवाज़ पड़ती है।

मां उससे छिटककर अलग होकर बैठ जाती है। कहती है—'आइए !'

'खट्-खट्' की आवाज़ कुछ निकट आती है। हल्की सांसों का एक स्वर उसके कानों के परदों को छूता है।

'रीति !' उसकी मां उसे दोनों हाथों से थामकर उठाती है—'देख, तेरे पापा आए हैं।'

एक अपरिचित और नवीन कर-स्पर्श उसके गालों को स्पन्दित करता है। वह आंखें फाड़कर देखना चाहती है—पापा को, लेकिन···

'रीति !' पापा धीरे से उसके कानों में फुसफुसाते हैं। उनके होंठ उसका मुंह पुचकारते हैं।

'भाभी आ रही हैं।' एकाएक मां बुदबुदाकर कहती है।

'खट्-खट्' की आवाज़ क्रमशः धीमी होती हुई दूर चली जाती है।

अब उसकी दादी की आवाज़ उसके कानों में पड़ती है। वह उनके पैरों की आवाज़ पहचानने लगी है।

अब उसके यहां आने वाला हर व्यक्ति उसकी आंखों के बारे में ज़रूर पूछता है, उसकी पुतलियों के बारे में ज़रूर पूछता है।

वह अपनी आंखें नचाती है, पुतलियां घुमाती है। लेकिन···क्या सब कुछ ऐसा ही है ? अंधेरे से भरा हुआ ? मां, दादी और पापा ? सब अंधेरे जैसे धुंधले, काले···

बुआ घंटों से उसके साथ खिलवाड़ कर रही हैं। वह अब उकताकर भूखी हो गई है।

'लो, री, रीति अपनी !' जब वह रोने लगती है, तो उसकी बुआ एक बार ज़ोर से उसके गालों पर चूमकर उसे मां की गोद में डाल देती हैं।

उसका रोना बंद हो जाता है, क्योंकि वह तुरन्त अपनी मां की

गोद पहचान लेती है। मां अभी-अभी ही नहाकर आई है और कहीं-कहीं अपना शरीर ठीक से सुखा भी नहीं पाई है। रीति स्तन ढूंढ़ती है और पाकर चूसने लगती है जल्दी-जल्दी।

'यह क्या कर रही है ? दादी की तीखी आवाज़ उसके कानों में गूंज जाती है—'नहाकर फौरन लड़की के मुंह में दूध दे दिया !'

एक झटके के साथ उसके मुंह से स्तन खिंच जाता है।

'मारेगी क्या लड़की को सरदी में !' दादी फिर उलाहना देकर चली जाती हैं।

रात हो गई है। उसने पुतलियां नचाना बन्द कर दिया है। उसकी दृष्टि स्थिर हो रही है। एक पीली बिन्दी जैसी दिखाई देती है दिए की बत्ती। दूर पर टिमटिमाती हुई—झिलमिल-झिलमिल।

काफी अंधेरे से चहल-पहल हो रही है। उसे नहलाया जाता है और एक सूखे कपड़े में लपेट दिया जाता है।

'ले अपनी भतीजी को।' उसे किसीकी गोद में डाल दिया जाता है। उसे बुआ धीरे-धीरे हिलाती हैं, उचकाती हैं, चुमकारती हैं, उसकी ठोढ़ी पर उंगली रखकर उसे हंसाने की कोशिश करती हैं।

सचमुच यह सब कुछ उसे भाता है। वह हंसती हुई मुंह फाड़ती है, कभी-कभी किलकारी मारती है और जितनी तेज़ चला पाती है, उतनी तेज हाथ-पैर चलाती है।

'बड़े दुलार हो रहे हैं, भतीजी के।'—कोई बुढ़िया कहती है कुढ़-कर।

'बुआ की गोद में तो बडी खचकोलियां कर रही है।'

झाड़ू लग रही है, कपड़े निचोड़े जा रहे हैं, पुराने कपड़े बाहर मेहतरानी के लिए भेजे जा रहे हैं, महरी एक छपी हुई धोती मांग रही है, नेग हो रहे हैं, मखाने पकने की सुगन्ध फैल रही है और उसके साथ-साथ धुआं फैलकर भर रहा है, कड़वा, तीखा।

घंटों से नल खुला हुआ है, तमाम बरतन खड़क रहे हैं, बालटी, लोटा, कढाई, पौनिया...।

मां को आज कई बालटियों से नहलाया गया है और स्नान के लम्बे कार्यक्रम के बीच-बीच सिर भी मलना पड़ा है।

सायंकाल का सन्नाटा फैलने लगता है। कमरे का लाल, धुंधला वातावरण काले रंग में रंगने लगता है, उसकी घूमती हुई पुतलियां फिर एक बिन्दु पर केन्द्रित होने लगती हैं, उसी पीले चमकीले बिन्दु पर।

'खट्-खट्' की धीमी आवाज़ के साथ उसके कान खड़े होते हैं। उसकी लगती हुई आंखें एकाएक स्थिर हो जाती और फैलने लगती हैं। कोई उसके पास आ रहा है। उस पीले बिन्दु को ढककर उसकी छाया आगे बढ़ती है। उसकी बगल में लेटी हुई मां धीरे-से उठकर खड़ी हो जाती है।

फुसफुसाहट की आवाज़ होती है। मां जल्दी-जल्दी कुछ कह रही है।

'रीति !' उसके कानों पर कोई होंठ रख देता है।

पापा ! उसके पापा आए है।

'खट्-खट्' की आवाज़ धीमी होती हुई चली जाती है। उसकी मां फिर वापस आकर उसके पास लेट जाती है और एक बार उसे जोर से भींचकर दुलार कर लेती है।

पीले, चमकीले बिन्दु पर फिर उसकी आंखें खिच जाती हैं। धीरे-धीरे वह कांप-कांपकर चौंकती हुई सो जाती है।

आज सवेरे से ही एक नई स्त्री आकर वहां बैठ गई है और उसकी मां से घुल-घुलकर बातें कर रही है। उसकी मां भी उससे उत्साह और आत्मीयता के साथ बोल रही है।

'रीति !' तुम्हारी मांसी आई हैं !' उसकी मां उसे उठाकर एक हथेली पर बैठाते हुए, उसे मासी को दिखाता है।

'हाय!' उसकी मासी आह भरती हैं, 'लड़की तो बड़ी गोरी है गिट्टक जैसी!'

एक हुलास भरी थपकी के साथ उसे फिर लिटा दिया जाता है।

'मम्मी!' मचलती आवाज़ में एक छोटी बच्ची कहती है, 'हम भी खिलाएंगे रीति को!'

'आज नहीं, फिर खिलाना।' मासी उसे मना करती है।

'नहीं।' वह और मचलती है, 'हम अभी खिलाएंगे।'

इस बार उसे कोई उत्तर नहीं मिलता, बल्कि एक चांटा उसके गाल पर मारा जाता है। वह चुप होकर रीति को फिर किसी दिन खिलाने की बात मान जाती है।

'बड़ी दुबली हो गई हो।' अपनी बच्ची से निबटने के बाद मासी फिर कहती हैं।

उत्तर में मां, सिर्फ हंसकर रह जाती है।

'यहां तो बड़ा सीलन रहती होगी।' उसकी मासी फिर कहती हैं।

'ऐसी तो कोई बहुत ज्यादा नहीं है।'

'नहीं, है क्यों नहीं।' मासी कहती हैं—'तन्दुरुस्ती के लिए यह बहुत खराब है।

'मगर करें क्या?' मां कहती है—'हमारे यहां तो सभी के बच्चे यहीं पैदा हुए हैं।'

'खैर, खाने-पीने का ख्याल रखा करो।'

२

अब मां ऊपर के खण्ड के अपने कमरे में आ गई है। यहां पर हर वक्त रोशनी भरी रहती है। रीति पलंग पर पड़ी अपनी खुली आंखें एक लाल-सी सतह पर फिराती लगती है। नीचे यही लाली धुंधली-सी दिखाई देती थी। यहां उसमें ज़्यादा चमक है।

शाम के बाद, जब यह लाली खत्म हो जाती है और धुंधली होती हुई काले अंधियारे में बदल जाती है, तब रीति बजाय दिए की बत्ती के, एक बल्ब की ओर ताकती रहती है। उसकी ओर उसकी आंखों की टकटकी-सी बंधी रहती है। वह उसकी तरफ निहारती रहती है, निहारती रहती है, अपलक···। धीरे-धीरे गहरी नींद का परदा उसकी आंखों पर गिरता है और वह सो जाती है। मगर आधी-आधी रात को जब वह जागती है, तो एक हल्की नीली रोशनी वाली बत्ती देखती है, धुंधली, फीकी नीली-नीली रोशनी···।

अब रीति केवल मां के स्तन या कपड़े की बत्ती से दूध नहीं पीती है, बल्कि निपुल वाली शीशी से पीती है। शीशी में एक निश्चित स्थान तक दूध भरकर उसके पेट पर इधर-उधर से दो तकिये लगाकर उनके सहारे रख दिया जाता है। वह निपुल चूसने लगती है। शीशी खाली होने पर वह केवल निपुल ही चूसती रहती है। काफी देर तक

चूसने पर जब गला सूखने लगता है, तब उसे रुलाई आती है। कभी-कभी शीशी खाली हुए बिना ही उसके पेट पर से लुढ़क जाती है। फिर उसे यथास्थान रखवाने के लिए रीति को अनिवार्य रूप से रोना पड़ता है।

वातावरण भी अब उसे अधिक हलचल से भरा लगता है। एकान्त बहुत कम रहता है। आने-जाने वाली औरतों की संख्या भी बढ़ गई है। कभी-कभी इन स्त्रियों के सामने भी उसे दूध पिलाया जाता है, लेकिन शीशी से नहीं—चांदी के चम्मच से। एक छोटी-सी चांदी की कटोरी में दूध रख लिया जाता है और छोटे चम्मच से थोड़ा-थोड़ा करके उसके मुंह में उंड़ेला जाता है। वह उसे फौरन गटक जाती है। जब तक दूसरा चम्मच भरकर उसके मुंह तक लाया जाए, तब तक उसका धैर्य छूट जाता है और वह चप-चप करके अपनी जीभ ऊपर-नीचे करने लगती है। उस समय वह बहुत अच्छी लगती है।

रोज सवेरे रीति की मां जब स्नान करने गई होती है और रीति अकेली रह जाती है, तब घर के तमाम छोटे बच्चे, जो पहले से ही मौका ताक रहे होते हैं, उसे आकर घेर लेते हैं। तीन-तीन, चार-चार बच्चे उसके पलंग पर चढ़ आते हैं। बारी-बारी से प्रत्येक उसे गोद में लेकर खिलाता है। कभी-कभी उनमें आपस में अपनी बारी के लिए झगड़ा भी हो जाता है और उनकी लड़ाई में रीति की ही हानि होती है।

ये बच्चे रीति को गोद में लेकर अपने मुंह से तरह-तरह की आवाजें निकालकर उसे चुमकारते हैं, हिलाते हैं, उचकाने की कोशिश करते हैं और गुदगुदी करके हंसाते हैं। कभी-कभी वह उत्साह में भरकर किलक उठती है और उसके किलकारी मारते ही बाल-समूह में एक प्रकार की उमंग की लहर दौड़ जाती है और उस समय वह

जिस किसी बच्चे की गोद में होती है, दूसरे बच्चे उसे वहां से हटाकर स्वयं लेने की कोशिश करते हैं। इस छीना-झपटी में रीति का हाथ-पैर भी दब जाता है और वह रो भी पड़ती है। उसके रोते ही बच्चों में एक प्रकार का डर-सा छा जाता है और वे उसे जल्दी से जल्दी चुपाने के लिए संयुक्त प्रयास करने लगते हैं। और उनके प्रयत्न का सुपरिणाम भी शीघ्र ही सामने आता है। वह चुप होकर किलकने लगती है। बच्चों को जैसे स्वर्ग मिल जाता है। परन्तु इसी समय रीति की मां के लौटने की आवाज़ आती है और बच्चे एक के पीछे एक करके वहां से खिसक लेते हैं।

उस दिन दोपहर होते-होते घर में ऐसा शोर होता है कि बस!

'लाला होने में तेरे क्या बांटूं रे!' पांच-छै हिजड़ों के मुंह से भोंडी आवाज़ें निकलकर गूंजती हैं और साथ ही उनकी पूरी हथेलियों के पिटने से तालियों की थाप जैसी पड़ती है।

'फिर आना किसी दिन!' दादी ऊंची आवाज़ में निषेध करती हैं, 'यह कौन-सा वक्त है? अभी घर में रोटी तक तो उठी नहीं है।'

'ऐ तो मैं कौन जल्दी कर रही हूं!' एक हिजड़ा फिर हाथ नचाकर ताली पीटता है, 'ऐ क्या हम तुम्हारे कहने से थोड़ी देर रुक नहीं जाएंगी!'

'कह दिया आज नहीं फिर किसी दिन आना।' दादी की आवाज़ फिर सुनाई पड़ती है।

'ऐ रानी जी!' एक ताली के साथ हिजड़ा कहता है, 'भगवान् रोज़-रोज़ आने का दिन करे।'

'चल मरे!' दादी हंसकर कहती हैं।

उनके हंसने से हिजड़ों की हिम्मत बढ़ जाती है। अब उनके

लाख कहने का भी उनपर कोई असर नहीं होता, और पांचों-छहों हिजड़े अपना काम शुरू कर चुके होते हैं।

एक हिजड़ा अपनी लम्बी-लम्बी टांगें मोड़कर ज़मीन पर लेट जाता है और भोंडे तरीके से हाथ-पैर पटकना शुरू कर देता है। दूसरा ज़ोर-ज़ोर से भारी हथेलियां ढोलक पर पटकने लगता है, तीसरा रकाबियों के बराबर मंजीरे ठुनकाने लगता है, चौथा अपनी चौड़ी हथेलियां पीटने लगता है, पांचवां गाने और छठा नाचने लगता है।

देखते ही देखते बच्चों, औरतों और लड़कियों की एक भारी भीड़ जमा हो जाती है आंगन के चारों ओर।

'अरी मां ओ मां!' एक हिजड़ा अपने पेट पर धोती के नीचे गठरी छिपा लेता है और गर्भिणी स्त्री की भांति पीड़ा से छटपटाने लगता है।

'क्या है बहू री!' दूसरा हिजड़ा उसकी सास बनकर पूछता है।

'उई!' पहला वाला कांखता है, 'दरद होत है।'

'कहां?'

'पेट पिरात है।'

'अरी दौड़ियो री दौड़ियो!'

भाग-दौड़ मच जाती है। जल्दी से दाई को बुलाने के लिए ससुर जी भेजे जाते हैं। दाई भागी-भागी आती है। उसे ज़रूरी हिदायतें दी जाती हैं, 'पहलौठी का मामला है।'

'कैंची लाओ!' दाई बहुत होशियार है। सारा काम होशियारी से निबट जाता है।

'ऐ पोता मुबारक!'

और फिर एक मिला-जुला गुल-गपाड़ा मचता है—ऐसा कि कानधरी आवाज नहीं सुनाई पड़ती।

दिनभर शोरगुल, कभी चमकीली लाली, कभी हल्की, रात को कभी तेज रोशनी, कभी धुंधली हरी, बच्चों का कोलाहल, आने-जाने वाले स्त्री-पुरुषों के कण्ठ-स्वर, मां का दुलार, पापा का स्नेह······

'ऐ बहू !' पड़ोस की बुढ़िया एक दिन कहती है, 'इसकी आंखें तो कुछ अजीब-सी हैं।'

'हां, कुछ-कुछ लगे तो मुझे भी ऐसा ही है।' रीति की दादी भी सहमति प्रकट करती हैं।

'ऐ, अब तो इसकी मां नहा चुकी होगी।'

'हां, कल आखिरी नहान हो गया।'

'ऐ मेरे ख्याल से तो अब इसे किसी डाक्टर को दिखाना चाहिए।'

'हां, सोचती हूं यह काली जी पूज आए तो किसी आंख वाले डाक्टर को दिखाया जाए।'

'ऐ हां बहू! दिखाना जरूर। आंख का मामला है और बेटी की जात!'

प्यार की छाया में वह पलती है। धीरे-धीरे संसार की वस्तुओं से उसका परिचय बढ़ता जाता है। पारिवारिक दिनचर्या का क्रम समझ में आता है। वह कल्पना से भी बहुत कुछ समझने की चेष्टा करती है। कानों पर जोर देकर घटनाओं का आभास पाती है। कोई धीमा-सा संकेत पाकर भी उसके कान सजग होने लगते हैं—कौन आ रहा है? कुछ गिरा है? कोई बर्तन खड़का है? किसी

परिचित की आवाज़ है या नये आदमी की ? या, या, या ?........

ऐसे अवसरों पर पल भर के लिए उसकी आंखों के घूमने की गति में अन्तर आ जाता है। थोड़ी स्थिरता आ जाती है उनमें। और उसके कान चौकन्ने हो जाते हैं। वह अधैर्य से प्रतीक्षा करती है—किसीके आने की, किसीके बोलने की, किसी चीज के गिरने की, किसीकी पुचकार की, ताकि कुछ स्पष्ट हो।

उसकी पहली वर्षगांठ के साथ-साथ उसके सुख के दिन समाप्त होते हैं। कष्ट, पीड़ा और यन्त्रणा से उसका परिचय होता है। उसपर एक के बाद एक करके आपत्तियां आती हैं। उसके जीवन का अनुभव बढ़ता है, परन्तु अपने ढंग से। सारा संसार उसके लिए एक अनोखा अस्तित्व रखता है। दूर से आते हुए आदमियों के पैरों की आवाज़, वातावरण में गूंजते हुए स्वर, घर में रखी हुई विविध वस्तुएं, विभिन्न सम्बन्धी...।

वह अपने व्यक्तित्व का अधिकाधिक क्षेत्र-विस्तार चाहती है। वह अपनी सीमाओं का अतिक्रमण करना चाहती है। वह बड़ी कठि-नाई से करवटें लेकर खिसकती हुई पलंग के किनारे पाटी पर पहुंचती है और यह जानने का प्रयत्न करती है कि उसके पलंग के छोटे-से बिस्तर के चारों ओर क्या है। वह पेट के बल जमकर पाटी पर अपनी छोटी-छोटी हथेलियां रखकर धीरे-से आगे झुकती है—ऊपर-नीचे, इधर-उधर देखती है। एक अजीब-सा धुंधला फैलाव, छोटे-बड़े, काले, चमकीले, धुंधले धब्बे, परन्तु सब कुछ अस्पष्ट....।

बड़े-बड़े भ्रम गूंजते हैं उसके मस्तिष्क में अनेक वस्तुओं के विषय में। अपने कमरे में रखा तमाम सामान ; कभी लगता है कि वे सब वस्तुएं स्थिर हैं और उनकी स्थिति में कोई अन्तर नहीं लाया जा सकता। पर जब उन्हें इधर से उधर खिसका दिया जाता है, तब

उनकी धुंधली रूपरेखा उसके निकटतर आती है। वह उन्हें पूर्ण रूप से समझने की चेष्टा करती है, उनके आकार-प्रकार का अनुमान लगाती है। एक ऐसी कल्पना करती है, जिसका आधार उसकी धुंधली दृष्टि के अनुसार पड़ने वाली छाया होती है। प्रत्येक वस्तु एक विशिष्ट प्रकार के कुहरे से अस्पष्ट, धुंधली, आवृत····

वह दिन और रात के प्रकाश और अन्धकार के स्वाभाविक क्रम को समझने का यत्न करती है। जब खूब कोलाहल रहता है, चारों ओर अनेक लोग बोलते-चालते, चलते-फिरते रहते हैं और एक छंटता हुआ-सा आवृत प्रकाश एक निश्चित रूप में छाया रहता है, तब तक दिन रहता है और जब प्रकाश एक बत्ती में केन्द्रित हो जाता है और वातावरण में एक प्रकार की अन्धकारमय शिथिलता-सी आ जाती है, उसकी मां उसके पास आकर लेट जाती है, कमरे में पापा आ जाते हैं, तब रात हो जाती है और रात के बढ़ने के साथ-साथ उसकी कोमल पलकें झपने लगती हैं···।

घटना-चक्र की तीव्र गति के होते हुए भी रीति के जीवन में बहुत शिथिल गति से विकास हो रहा है। उसकी सीमाएं उसे सदैव विवश कर देती हैं। अन्यथा वह चाहती है, वह चाहती है···वह बहुत कुछ चाहती है····

एक है उमा। रीति से सिर्फ एक साल बड़ी है। बड़ी प्यारी, छोटी-सी, गोल-मटोल, फूले-फूले गाल, बहुत धीरे-धीरे लुढ़कती हुई चल पाती है। रीति के पास अक्सर आती है। आते ही पहले भड़ाक्-से कमरे के दरवाजे को धक्का देती है।

रीति तुरन्त चौकन्नी हो जाती है। दरवाजा खुलने की आवाज उसकी पलकों को फैला देती है।

'लीत !' बहुत अस्पष्ट और भारी स्वर में उमा दरवाज़े की चौखट पर खड़ी होकर पुकारती है।

रीति का सिर धीरे से उठता है, स्वाभाविक रूप से। उमा की ललक बढ़ जाती है—रीति जाग रही है। वह हुलसते हुए कदमों से आगे बढ़ती हुई आती है और पलंग के पास हाथ टेककर सहारे से खड़ी हो जाती है।

रीति अनुभव करती है और देखती है—दरवाज़े से आने वाली प्रकाश-किरणों का समूह अंश-रूप में उमा के आने से हिलता है। एक छोटा-सा धब्बा.....। उमा का धुंधला शरीर थोड़ा गहरा होता हुआ उसके पास तक आ जाता है। वह उमा के चेहरे को देखना चाहती है, मगर एक सपाट कालेपन के अतिरिक्त उसे कुछ नहीं दिखाई देता।

'लीत' अपनी थल-थल बांह को उमा रीति के शरीर पर टिका-कर गुदगुदाने लगती है। रीति भी अपने हाथ-पैर पटककर किलकती है। उमा उसे दुलारती है।

रीति चाहती है कि वह उमा बने...

एक है उषा। उमर है आठ-नौ साल, लेकिन स्वभाव है बिल्कुल अम्मा-दादी जैसा। तीसरे दरजे में पढ़ती है। सवेरे सात बजे स्कूल चली जाती है, फिर बारह बजे लौटकर आती है। खाना खाने के बाद तुरन्त रीति के पास आती है।

'रीति नहा चुकी क्या?' वह रीति को बड़े दुलार से गोद में उठाकर उसकी मां से पूछती है।

'अभी नहीं।' उत्तर मिलता है।

'तो हम नहला दें ?'

'हां।'

उषा एक बड़े गोल तसले में पानी भरती है। साबुन और तौलिया उसके पास रखती है। फिर आकर रीति को उठा लेती है और उसको अपनी गोद में लिटाकर उसके गले की गद्दी खोलती है।

'रोज गद्दी गीली कर लेती है मरी।' उषा उसे डांटने जैसे लहजे में कहती है और उसकी ठोड़ी के ऊपर अंगूठा दबाकर उसके निचले होंठ को फैलाती और उसे हंसाती है। रीति किलकती है और दोनों हाथ हवा में मारकर उषा के हाथ को पकड़ने का यत्न करती है।

अब उसका झबला और फिर बनियाइन खोली जाती है। फिर उसे हवा में उछाला जाता है और उससे पूछा जाता है, 'क्या अभी तेरे नहाने का वक्त नहीं हुआ है?'

रीति जैसे कुछ नहीं सुनती। सिर्फ मुंह फाड़कर रह जाती है।

'चल, नहा!' उषा उसे दोनों हाथों से लटकाती है और जमीन पर अपने घुटने फैलाकर उसे अपने घुटनों पर उलटा लिटा लेती है। फिर धीरे-धीरे उसकी पीठ पर तेल मलती है और फिर सीधा करके उसकी छाती और पेट पर। अन्त में उसे सहारे से बैठाकर उसके सिर पर चुपड़ती है—हथेली की थाप ताल के हिसाब से पड़ती है—

'चक चक चांदी,
तेल लगावे बांदी।
तेल की सुखाई आवे,
रीति को मोटाई आवे।'

पांच-सात मिनट तक तेल-मालिश होती रहती है। फिर उसे पानी से भरे हुए तसले में बैठा दिया जाता है। साबुन मलने के बाद उसके शरीर पर एक-एक गिलास करके पानी उंड़ेला जाता है। फिर तौलिया में कुछ देर तक लपेट छोड़ने के बाद उसके बाल काढ़े जाते

हैं, पाउडर लगाया जाता है, काजल लगाया जाता है, बिन्दी लगाई जाती है और नई बनियाइन-झबला पहनाने के बाद रंगीन गद्दी उसके गले में पहना दी जाती है''''रीति को उषा बहुत चाहती है।

रीति चाहती है कि वह उषा बने'''

एक है अशोक। उमर है तीन-साढ़े तीन साल। दिन भर सारे घर को सिर पर उठाए घूमता है। सवेरे चाय के समय अपने हिस्से का नाश्ता हाथ में थामे एक बार रीति के पास ज़रूर हो आता है।

आते ही पूछता है, 'रीति, जलेबी लोगी ?'

रीति चौकन्नी हो जाती है। उसकी आंखें फैल जाती हैं और होंठ किसी मीठी वस्तु के स्पर्श की प्रतीक्षा करते हैं।

उंगली में मिठाई का रस सानकर वह बड़े प्यार से रीति को चटाता है। वह जल्दी-जल्दी होंठ चूसने लगती है। इस प्रत्याशित परिणाम को देखकर अशोक प्रसन्न होता है। परन्तु रस चटाने से अधिक का त्याग वह नहीं करना चाहता। इसलिए लोभवश तुरन्त मिठाई मुंह में रख लेता है।

अब वह दोनों हाथ खाली हो जाने पर ताली बजाता है, उसका ध्यान अपनी तरफ खींचने के लिए हंसता है, चुमकारता है और जोर-जोर से उसका नाम लेकर पुकारता है और उसकी मां के आने पर खिसक जाता है।

रीति अशोक बनना चाहती है'''

एक है विमल। अभी बहुत छोटा है। हमेशा अपनी मां की गोद में रीति के पास आता है। रीति को गोद में लेने की ज़िद करता है, उसे दूध पिलाने के लिए मचलता है और रीति को अपनी अजीब-सी

भाषा में न जाने क्या-क्या बताता है।

रीति विमल बनना चाहती है...

सबसे अधिक स्फूर्ति रीति को सवेरे के वक्त अनुभव होती है। सवेरे पांच बजे वह जागती है। उस वक्त सब लोग सो रहे होते हैं। सबसे पहले वह मां को टटोलती है बगल में। अगर वह उसकी बगल में न होकर पापा के बिस्तर पर होती है, तो वह चीख-चीखकर कमरा गुंजा देती है और अगर उसके पास होती है तो वह निर्भय होकर ऑ-ऑ-ऑ-ऑ करने लगती है।

क्रमशः उसकी आवाज़ और शारीरिक गति में तीव्रता आने लगती है। पौ फटती है। कमरे में प्रकाश बढ़ता जाता है। हर तरफ एक तरह का चमकीलापन मालूम होने लगता है, स्वच्छ! उसका मन उल्लसित होता है। कमरे के दरवाज़ों की सेंधों में से कुछ धूप घुसती है—बिखरी हुई प्रकाश-पंक्तियों के रूप में।

रीति के धूमिल नेत्र फैलते हैं। उसकी पुतलियां उन प्रकाश-पंक्तियों की ओर घूमने लगती हैं। उसे आश्चर्य होता है, इस भिन्न प्रकाश की तीव्रता पर। प्रकाश-किरणें उसके मुंह पर पड़ती हैं। वह सिर घुमाने लगती और उससे अठखेलियां करती है।

अब वह रोज़ धूप से खेलती है।

सवेरे से लेकर रात तक, परिवार के सारे कार्य-व्यापार को रीति कौतूहल से सुनती-समझती है। सवेरे तड़के से एक-एक आदमी का उठना, बच्चों का रोना, दूध वाले का आना, महरी का बर्तनों को खड़खड़ाना, किसी-किसीका आकर रीति को दुलारना, उसकी मां का नहाने जाना, पापा का खाना खाकर दफ्तर जाना, उषा का उसे तसले में बैठाकर नहलाना, नये कपड़े पहनाना, पाउडर लगाना, सिर

में तेल डालकर कंघे से बाल घुंघराले बनाना, दोपहर के वक्त कभी परिचित और कभी अपरिचित स्त्रियों का वहां आना, उनका विविध विषयों पर बातें करना, कभी-कभी किसी एक बात पर ज़ोर-ज़ोर से बोलने लगना, या लड़ पड़ना, मिसरानी का आकर अनाज फटकना, तीसरे पहर बच्चों का स्कूल से आकर नाश्ते के लिए शोर मचाना, फिर ऊधम करना, रात में घर के पुरुषों का आना शुरू होना, धीरे-धीरे रात बढ़ने के साथ घर में पूर्ण शान्ति हो जाना....

कुछ दिनों से रीति अपने आप बैठकर घिसटने लगी है। पहले जब उसे बिना किसी सहारे के बैठाकर उसके सामने कोई चमकीला खिलौना रख दिया जाता था, तो वह उससे खेलने लगती थी। परन्तु उसका यह खेल ज़्यादा देर तक नहीं चल पाता था और वह जल्दी ही लुढ़क जाती थी। लुढ़कते ही वह आदतन रोने लगती थी, हालांकि गुदगुदे गद्दे पर लुढ़कने में उसके कहीं चोट नहीं आती थी।

परन्तु अब वह घण्टों बैठी रह सकती है। वह कुछ दूर घिसट भी लेती है। लेकिन वह पलंग पर बैठकर घिसटने के बजाय फर्श पर घिसटना अधिक पसंद करती है, जहां से वह उसकी सीमाओं को खोज सके, कमरे की गतिहीन वस्तुओं के अस्तित्व से परिचित हो सके।

कभी-कभी उसे अपने इस प्रयत्न में चोट भी खानी पड़ती है। उसका माथा मेज़ के पाये, पलंग की पाटी, या कुर्सी की चौखट से टकरा जाता है और वह बिलखने लगती है, मगर फिर वैसा ही करती है। उसे आश्चर्य होता है उन बच्चों पर जो दिनभर किलकते फिरते हैं और जिन्हें कभी इस तरह की चोटें नहीं लगतीं। विवशता की खीझ से भरकर वह और भी तीव्र गति से भागती है और उतनी ही ज़ोर की चोट खाती है। वह रोने लगती है ..

३

आज सवेरे उसे ज़रा जल्दी नहलाया जाता है। स्नान के बाद उसे स्वभावत: स्फूर्ति मालूम होने लगती है, जिसे वह अपनी किलकारियों से व्यक्त करती है। मुलायम मलमल का झबला और बनियाइन पहनाने के बाद उसके बाल ठीक किए जाते हैं।

थोड़ी ही देर में वह पापा और मम्मी के साथ रिक्शे पर बैठकर बाहर जाती है। उसे लगता है कि उस चमकीले प्रकाश का फैलाव उससे कहीं अधिक है, जितना वह घर में देखकर अनुमान लगाती थी। वह गोद से उछलती है, उस प्रकाश में खूब नहाना चाहती है, सराबोर हो जाना चाहती है, डूब जाना चाहती है।

रिक्शे से उतरकर सब लोग फिर एक बन्द जगह में आते हैं, जहां उसे रात वाली बिजली की रोशनी दिखाई देती है। एक सरसराहटयुक्त वातावरण उसे सहमाता है। यह सब क्या है? वह कहां है?

'रीति!' उसके पापा उसे उसकी मम्मी की गोद से अपनी गोद में ले लेते हैं। धीरे से उसका गाल चूमकर दुलारते हैं। उसका भय कुछ कम होता है।

उसे दूसरे कमरे में ले जाया जाता है। उसके पापा एक कुरसी पर बैठ जाते हैं। वह कौतूहल से अपनी पुतलियां चारों तरफ घुमाने

लगती है, बिजली के चारों ओर। तभी बिजली बुझा दी जाती है। कमरे में अंधेरा घुप्प हो जाता है। उसके कलेजे की धड़कन बढ़ जाती है। फुसफुसाहट से पता चलता है कि वहां पापा के अलावा एक आदमी और है।

एक बहुत पतली-सी प्रकाश-रेखा फैलकर उसकी आंखों तक आती है। उसकी पुतलियां स्थिर हो जाती हैं, प्रकाश-रेखा इधर-उधर नर्तन करती है, पुतलियां भी उसी प्रकार घूमती हैं।

लगभग पन्द्रह मिनट तक यही क्रम चलता है। अब वह ऊबकर रोने और गोद से उठ जाने के लिए छटपटाती है। कमरे में फिर प्रकाश कर दिया जाता है, और वह बाहर दूसरे कमरे में आकर मम्मी की गोद में चली जाती है।

उसे सब कुछ नया मालूम होता है। स्तब्धता से भरा हुआ वातावरण, धीमी आवाजें, उसके पापा की दूसरे आदमी से बातचीत—

'यह जन्म से है ?'

'जी हां।'

'बच्ची की इस वक्त क्या उम्र है ?'

'करीब एक साल।'

'ओह !'

'क्यों ?'

'आपने बहुत देर कर दी। आपको बहुत पहले दिखाना चाहिए था।'

'अब आप क्या राय देते हैं ?'

'अभी कुछ कहा नहीं जा सकता। तीन दिनों तक दोनों आंखों में एट्रोपीन डालने के बाद दिखाइएगा, तब बताऊंगा।'

'अच्छी बात है, डॉक्टर साहब !'

और अब रीति डॉक्टर नाम के आदमी से परिचित होती है, जिसका नाम ही उसे आतंकित करने वाला लगता है।

तीन दिन तक आंखों में चिरचिराहट पैदा करने वाली दवा उसकी आंखों में डाली जाती है। उसकी धुंधली आंखें इससे और भी धुंधली हो जाती हैं।

आज फिर रीति को उसी जगह लाया जाता है। सवेरे से ही उसकी मम्मी को इसकी सूचना दे दी गई थी और उन्होंने उसे नहला-धुलाकर तैयार कर दिया था। रीति को परसों का अनुभव है। इसीलिए वह आज सहमी-सहमी-सी है। बड़ी कठिनाई से आधी शीशी दूध पी सकी है, जबकि रोज एक शीशी पीकर भी भूखी रह जाती थी।

'नमस्ते, डॉक्टर साहब !'

'नमस्ते, आइए।'

'क्या तीन दिन दवा डाल चुके हैं ?'

'जी हां, आज चौथा दिन है।'

'अच्छा, चलिए डार्क रूम में।'

रीति को लगता है, जैसे एकदम दिन से रात हो गई हो। जिस कमरे में अब वे लोग आते हैं, वह बिलकुल अंधेरा था।

एक कुरसी पर पापा उसे लेकर बैठ जाते हैं और सामने की कुर्सी पर डॉक्टर बैठता है। रीति का कलेजा धड़कने लगता है। वह काले अंधेरे में अपनी पुतलियां नचाने लगती है।

सहसा एक सूक्ष्म प्रकाश-किरण उस अंधकार में चमकती है…

रीति अपनी पुतलियां उसी तरफ घुमा देती है और एकटक उसीको घूरने लगती है—बहुत पतली-सी प्रकाश-रेखा···

रीति देखती है—वह प्रकाश-रेखा एक बिन्दु के समान इधर से उधर घूम रही है। उसकी गति के अनुसार ही वह स्वयं भी नेत्र घुमाने लगती है।···· थोड़ी देर बाद वे वहां से दूसरे कमरे में आ जाते हैं।

'कितनी उम्मीद है, डॉक्टर साहब ?'

'देखिए, आपने बहुत देर कर दी है, महाशय! मेरी राय में इसका इलाज तभी से कराना चाहिए था, जब यह पैदा हुई थी और इसकी आंखें खराब मालूम हुई थीं।'

'लेकिन अभी भी इसकी उमर मुश्किल से एक साल होगी। इतनी छोटी उमर का बच्चा ऑपरेशन···'

'जी हां, लेकिन अब काफी देर हो चुकी है।'

'तो आप क्या राय देते हैं ?'

'देखिए, जो हो गया, सो हो गया, पर मेरी राय में अब आपको और वक्त नहीं खराब करना चाहिए—इसकी दोनों आंखों का ऑपरेशन फौरन हो जाना चाहिए।'

'जी···'

'यह ऑपरेशन आप कहीं भी करा सकते हैं···'

'आप भी कर सकते हैं ?'

'हां, मैं भी कर सकता हूं, मगर मैं इसके लिए कम से कम दो सौ रुपये लूंगा। यों आप इस आपरेशन को अस्पताल में भी करवा सकते हैं।'

'आपकी क्या राय है ?'

'राय का इसमें कोई सवाल नहीं है। दोनों बातें हो सकती हैं—

आप जैसा ठीक समझें करें।'

'ऑपरेशन से दोनों आंखें बिलकुल ठीक हो जाएंगी ?'

'बहुत मुश्किल है कुछ कहना। फिर भी पचास प्रतिशत उम्मीद की जा सकती है।'

'अच्छी बात है'''आपकी क्या नज़र करूं ?'

'पन्द्रह रुपये।'

उस दिन रीति पहली बार अस्पताल आई थी। घर में सवेरे से ही इस नाम की धूम मची हुई थी।

इधर से उधर आते-जाते हुए तमाम आदमी, तमाम लोगों की मिली-जुली आवाज़ें, फुसफुसाहट, मरीज़ों की विवश कराहटें'''मौत का-सा सहमा हुआ वातावरण''''''''

'रीति!' ऊंची आवाज में कोई पुकारता है।

'जी हां।'

'इधर बैठिए!'

'........'

'कहिए''''?'

'इस बच्ची को दिखाना है, डॉक्टर साहब!'

'क्या तकलीफ है?'

'इसकी आंखें''''''''

'क्या पैदाइश से ही ऐसी हैं?'

'जी हां।'

'लाइए, इधर''''

दो कठोर हाथ उसका मुंह पकड़ लेते हैं, झिंझोड़ते हुए''''दो पत्थर की उंगलियां उसकी दोनों आंखों की पुतलियां बारी-बारी से

पलटकर देखती हैं''''वह जोर की चीख के साथ रोना शुरू कर देती है, पापा उसे पुचकारकर चुप कराने लगते हैं ।

'यह दवा उधर से डलवा लीजिए । तीन दिन डलवाने के बाद चौथे दिन फिर दिखाइएगा ।'

'अच्छी बात है ।'

आज सवेरे से रीति साफ फ्रॉक पहनाकर तैयार कर दी गई है। पापा का इन्तज़ार हो रहा है । जैसे ही वह चाय पी चुकेंगे, उसे अपने साथ ले जाएंगे ।

बार-बार वह अपनी गहरे रंग की भड़कीली फ्रॉक को अपनी फीकी आंखों से टोहती है। खुशी की हल्की लहर के साथ उसके हृदय में भयपूर्ण कम्पन हो रहा है । कुछ भयानक वस्तुएं एक घेरे में नाचती हुई उसे सहमाती हैं ।—डॉक्टर, अस्पताल, नर्स, सुई, ऑपरेशन'''

वह फिर अस्पताल आती है । तीन दिन से आंखों में होने वाली जलन आगे आने वाली विपत्ति का आभास दे रही है'''

अस्पताल में मौत का-सा सन्नाटा छाया हुआ है, लोग इधर से उधर मुरदों की तरह घूम रहे हैं, फुसफुसा रहे हैं—रूहों की तरह''''

रीति पापा की गोद में सिमट जाती है । पापा उसके लटके हुए पैरों को समेटकर एक मेज़ के पास से बचते हुए गुज़र जाते हैं'''' मेज़ पर पड़े हुए आदमी की भयावनी कराह रीति के कानों में पड़ती है ।

रीति की फीकी आंखें उसपर स्थिर हो जाती हैं—कौन है वह, कैसा है वह'''उसकी कल्पना सजग होती है—

''''''''सफेद कपड़े पहने हुए एक आदमी उस लम्बी मेज़ पर लेटा है । उसकी आंखों पर बंधी हुई पट्टी खोली जा रही है, कड़ी

उंगलियों के नुकीले नाखूनों से उसकी पलकें फैलाई जा रही हैं, उसकी आंखों के भीतर सुई लगाई जा रही है।....

....एक मुरदा रो पड़ता है।

'सीधे लेटो!' कोई फौलादी आवाज़ गूंजकर पिशाच की तरह उसे डांटती है...

श्मशान की-सी शान्ति हो जाती है।

पापा डॉक्टर के कमरे में पहुंच जाते हैं। रीति की रुकी हुई धड़कन मानो फिर चालू होती है।

फिर उसी अंधेरे कमरे में प्रकाश-बिन्दु रेखाएं खींचता है....

'देखिए! इसकी दोनों आंखों में आइराइटिस और कैटेरेक्ट है। चूंकि यह बाई बर्थ है, इसलिए इसको ठीक करने की कोई ज़िम्मेदारी नहीं ली जा सकती। हम कोशिश कर सकते हैं। उम्मीद करते हैं कि इसकी आंखों में थोड़ी-बहुत रोशनी आ जाएगी। यह भी सिर्फ इसलिए कहा जा सकता है कि अभी यह रोशनी देख सकती है, वरना कोई उम्मीद नहीं थी...।'

'तो आप क्या राय देते हैं?'

'मैं आपको परचा लिख देता हूं। कल आप इसे यहां भरती करा दीजिए। जहां तक होगा, परसों इसका ऑपरेशन कर दिया जाएगा।'

'अच्छी बात है।'

असह्य वेदना से छटपटाती हुई रीति रोती-कराहती है, मां उसे धीरे-धीरे थपथपाती है। वह मां की गोद में जाना चाहती है, लेकिन मां थपकी के संकेत से पलंग पर ही पड़े रहने को कहती है...

सवेरा हो गया है। वह भूख से व्याकुल होकर रो रही है, परन्तु उसे दूध नहीं दिया जा रहा है। उसके माथे पर कोई दवा लगाकर एक बड़े रूमाल जैसी सफेद पट्टी बांध दी गई है। उसका सिर पीड़ा से फट रहा है। शरीर आग की तरह जल रहा है।

···एक नर्स आती है। उसके एक सुई लगाकर चली जाती है। रोने-चीखने पर या उसे गोद में उठा लिया जाता है या पलंग पर लिटा दिया जाता है। परन्तु दूध या बिस्कुट नहीं दिया जाता।

····वर्तन खड़कते हैं। उसके हृदय में आशा की एक किरण फूटती है। अब शायद दूध गरम हो रहा है और उसे पिलाया जाएगा।··· लेकिन नहीं। उसकी प्रतीक्षा थक जाती है। वह फिर रोने लगती है।

पापा उसे गोद में उठाकर ले जा रहे हैं। साथ में मां और दादी भी हैं। उसने रोना बन्द कर दिया है और भयमिश्रित कौतूहल में खो गई है। सब लोग एक बड़े कमरे में आ गए हैं। लोगों की भीड़ की दबी हुई धीमी बातचीत कानों में पड़ रही है।

पापा की गोद में से अब वह दो अपरिचित हाथों में पहुंच जाती है। अज्ञात भय उसे कंपा देता है और वह चीख पड़ती है। कमरे में उसकी चीख गूंजकर रह जाती है। नर्स उसे किसी दूसरे कमरे में ले जाती है। जाते-जाते वह दादी के सिसकने की आवाज सुनती है।

···उसे एक लम्बी मेज पर लिटा दिया गया है। इधर-उधर से कई आदमी उसके उछलते हुए हाथ-पैरों को दबाए हुए हैं। उसके सिर पर एक बड़ी बत्ती चमक रही है, जिसकी चमक से उसकी फीकी आंखें चौंधिया रही हैं। उसकी चिल्लाहट बढ़ती जा रही है······

···उसकी पतली बांह को जकड़ लिया गया है। सुई लगा दी

गई है । उसकी चिल्लाहट कम हो रही है । वह अचेत हो रही है····

···उसकी दोनों आंखें जैसे मिर्च भरकर सी दी गई हैं । वह छट-पटा-छटपटाकर रह जाती है । उसकी आंखों, बालों, सिर और कानों को ढकती हुई पट्टी की तहें उसके छोटे-से मुख पर नाक तक बंधी हुई हैं । वह रोती है, कलपती है, चिल्लाती है······

मां उसे गोद में नहीं उठाती, झुककर उसके मुंह में अपना स्तन दे देती है, लेकिन वह दूध नहीं पीती—उसकी विलख से कमरा भर जाता है······

'रीति!' अपने हृदय के सारे स्नेह से अपनी आवाज़ को पागकर पापा उसे पुकारते हैं ।

उसके हृदय में हलचल मचने लगती है । उसका करुण रुदन सहसा उमड़कर गूंजने लगता है। वह उनकी गोद में जाने को व्याकुल हो उठती है । पापा उसके पलंग पर टिककर उसे धीरे-धीरे थपथपाने लगते हैं । लेकिन वह मचलती जाती है । अन्त में पापा उसे बहुत सावधानी से गोद में उठा लेते हैं । उसका सिर धीरे से अपने कन्धे पर टिका लेते हैं और उसे चुप कराने लगते हैं । रीति का रोना धीरे-धीरे सिस-कियों और हिचकियों में बदल जाता है ।

आठ दिन बाद वह अस्पताल से घर आ जाती है ।

४

आजकल घर के सब बच्चों को रीति के साथ खिलवाड़ करने का अच्छा बहाना मिला है—

अशोक पूछता है—'रीति ! तुम्हारी मम्मी का मुंह कैसा ?'

और रीति अपना मुंह बिचकाकर बताती है कि ऐसा !

विमल पूछता है—'तुम्हारे पापा का मुंह कैसा ?'

उषा पूछती है—'तुम्हारी नानी का मुंह कैसा ?'

उमा पूछती है—'तुम्हारे नाना का मुंह कैसा ?'

और बार-बार वह उसी प्रकार का मुंह बनाकर जवाब देती है। सैकड़ों बार मुंह बिचकाते-बिचकाते उसका मुंह दर्द करने लगता है और फिर जब कोई उससे पूछता है कि तुम्हारी अम्मा, दादी या नानी का मुंह कैसा, तो वह झुंझलाकर जवाब देती है—'मत जाओ !'

तीन-चार दिन से नीचे दादी के पास एक बुढ़िया आती है, जो दिन भर बैठी रहती है। उसकी आवाज़ बड़ी भयावनी है। बूढ़ी, हल्की, महीन खांसी भरी आवाज़ सुनते ही रीति ऊपर भाग आती है और फिर दादी के पास नहीं जाती।

····रीति को उससे डर लगता है।

'बुग्गी की अम्मा !' यही उस बुढ़िया का नाम है। इसी नाम से

उसे दादी भी पुकारती हैं ।

पहले एक बार रीति ने कौतूहलवश गठरी-सी मुड़ी बैठी उस बुढ़िया के पास जाकर उसका मुंह देखने की कोशिश की थी—धुंधला, काला, झुर्रियों वाला डरावना चेहरा, रीति की मां के चेहरे से ठीक उल्टा......

उस दिन उस बुढ़िया ने रीति का हाथ पकड़कर उसे अपनी गोद में खींचने की कोशिश की थी और रीति जोर से चीख पड़ी थी। उसकी मम्मा ने उसे गोद में उठाकर चुमकारते हुए चुप कराया था और कहा था—'यह बुग्गी की अम्मा हैं। इनके पास चली जाओ। यह तुम्हें प्यार करेंगी। तुम्हारे लिए गुड़िया बनाकर ला देंगी।'

और फौरन वह बुग्गी की अम्मां से कहती हैं—'बुग्गी की अम्मा ! कल रीति के लिए एक अच्छी-सी गुड़िया बनाकर ला देना।'

'अच्छा, ला देब !' बुढ़िया का गला फिर घरघराता है—'मुला ई हमरे पास तो अइती नईं है।'

'आएगी।' रीति की ममी कहती हैं, 'आएगी क्यों नहीं ?'

यह कहते हुए वह रीति को फिर बुढ़िया की ओर बढ़ाती हैं, पर वह नहीं जाती, और कसकर मम्मी की साड़ी का पल्ला पकड़ लेती है।

'लो गुड़िया !'

दो दिन बाद बुग्गी की अम्मा सचमुच एक सुन्दर-सी गुड़िया बनाकर ले आती हैं।

रीति अविश्वास भरा हाथ बढ़ाकर गुड़िया थाम लेती है। उसे अपनी आंखों के निकट लाकर देखती है—यह इसकी नाक होगी, ये आंखें, ये कान, ये चोटी—इसने मेंहदी लगाई होगी, काजल लगाया

होगा, बिन्दी लगाई होगी, लाली लगाई होगी, क्रीम····

रीति का कलेजा उछलने लगता है। गुड़िया का शरीर टोहती उसकी उंगलियां रुक जाती हैं। वह गुड़िया को पुचकारकर प्यार करती है। पुनः उसके अंगों का स्पर्श करती हुई अपनी छाती से उसे चिपका लेती है।

उसे यह बुग्गी की अम्मा अच्छी औरत लगती है····

एकाएक उसे कुछ ध्यान आता है। वह ऊपर कमरे में जाने के लिए ज़िद करने लगती है।····चिम्मच-कटोरी का इन्तज़ाम करना होगा, दूध पिलाना होगा, गुड़िया को भूख लगी होगी···

उस दिन वह पहली बार रेलगाड़ी पर बैठकर लखनऊ गई थी।

'खट्-खट्-खट्-खटाखट्' की तेज़ आवाज़ें···जैसे कोई बड़ी लोहे की मशीन पत्थर के बड़े-बड़े टुकड़ों को तोड़ रही हो···रेलगाड़ी की खिड़कियों से आते हुए तेज़ हवा के झोंके····तेज़ी से खिसकता हुआ संसार···

पापा जल्दी से रीति को तैयार करवाकर अस्पताल ले आए हैं। मनहूस सन्नाटा···

'आप कहां से तशरीफ ला रहे हैं?'

'इलाहाबाद से!'

'क्या तकलीफ है बच्ची की आंखों में?'

लापरवाही से दो मोटी खुरदरी उंगलियां रीति की आंखों की कोमल पलकों को उमेठती हैं। वह सिहरकर पापा के कंधे से चिपक जाती है···

'यह कब से है ?'

'पैदाइश से !'

'कहीं और दिखाया आपने ?'

'जी हां, इलाहाबाद में डॉ० नाथ को दिखाया था। उन्होंने इसकी दोनों आंखों में आपरेशन भी किया था।'

'क्या उसकी रिपोर्ट आपके पास है ?'

'जी हां !'

....

'ठीक है। इसको आप भारती करवा दीजिए। इसकी आंखों में एक-एक करके ऑपरेशन किया जाएगा। पहला ऑपरेशन कल हो जाएगा, अगर आप इसे आज ही भरती करवा दें।'

'बहुत अच्छा !'

दोपहर को उसे फिर अस्पताल में भरती कर दिया जाता है। वातावरण को पहचानते ही उसकी पुरानी स्मृतियां उसका कलेजा दहलाने लगती हैं। लेकिन दिन भर उसे कोई कष्ट नहीं दिया जाता —सुई तक नहीं लगाई जाती।

अगले दिन सवेरे से ही नाटक आरम्भ हो जाता है। सबसे पहले उसके माथे पर दवा लगाकर पट्टी बांध दी जाती है। बराबर रोने-चिल्लाने पर भी उसे एक बूंद दूध तक नहीं दिया जाता। उसके एक सुई लगाई जाती है और दस बजे के करीब वहां से दूसरी जगह ले जाया जाता है।

फिर वैसा ही आपरेशन वाला कमरा, वैसी ही फीकी रोशनी, वैसी ही मरणासन्न आवाजें, वैसे ही उसके शरीर का दस-दस हाथों द्वारा पकड़कर सुई लगाया जाना, वैसी ही बेहोशी...

इस बार उसकी एक ही आंख का ऑपरेशन होता है। पापा एक दिन रुककर घर लौट जाते हैं। जाते समय नौकर को तरह-तरह की हिदायतें देते जाते हैं—

'रीति को ज्यादा रुलाना मत, गोदी में भी बहुत कम उठाना, जहां तक हो सके लेटी ही रहने देना, और पट्टी खुलते ही, जैसा कुछ हो, फौरन तार से खबर देना, उसी वक्त···

अपने रक्तहीन गालों पर वह पापा का प्यार महसूस करती है···

····पापा चले जाते हैं।

चौथे दिन उसकी पट्टी खोल दी जाती है और आंख में दवा डालकर रूई चिपका दी जाती है—फाहे की तरह।

एक दिन एक छोटे बच्चे के गला फाड़कर चिल्लाने की महीन आवाज़ उसके कानों में पड़ती है—अन्य सभी आवाजों से भिन्न····

····यह कौन बच्चा होगा ? कैसा होगा ? गोरा ? काला ? शीशी से दूध पीता होगा या चम्मच से ? बिस्कुट खाता होगा या दाल-रोटी ? उसकी अम्मा उसे मारती होगी या प्यार करती होगी ? उसके भी सुई लगाई गई है क्या ? वह भी····

उसका विचार-क्रम एक जर्जर आवाज़ से भंग हो जाता है—

'मुझे जान से मार डालो मगर ये तकलीफें मत दो।' एक बुढ़िया चीखती है।

'चुप रहो। शोर मत करो।' तेज़ डांट पड़ती है उसपर—'अगर मरना ही था, तो यहां क्यों आईं ?'

रीति सहसा सहम उठती है।

···कैसी होगी यह बुढ़िया ? दादी की तरह ? बुग्गी की अम्मा की तरह···

पापा फिर लखनऊ आ गए हैं।

'आइए, बैठिए !'

'...........'

'कितने दिन हो गए ऑपरेशन हुए !'

'आज ग्यारहवां दिन है।'

'अच्छा, अभी देखता हूं।'

'............'

'आओ, बेबी, इधर देखो !'

लगातार रोने-चिल्लाने-सिसकने के कारण उदास, फीका, थका हुआ मुंह पापा के कंधे से उठाकर वह डॉक्टर की तरफ ताकती है—डॉक्टर ! धुंधली-सी काली मूर्ति, लेकिन कितनी भयानक···वह मुंह फेरना चाहती है।

'बेटे ! इधर देखो, यह क्या है ?' उसके पापा फिर उसका मुंह धीरे से उधर ही मोड़ देते हैं।

वह पुनः डॉक्टर की ओर ताकती है—

डॉक्टर ! देख रहा है उसे, उसकी आंखों में झांक रहा है, घूर रहा है, तरेर रहा है—

वह फिर पापा के कंधे से सिर टिका लेती है।

'इसकी दूसरी आंख का ऑपरेशन कब तक करेंगे ?'

'देखिए, अभी इसकी बाईं आंख की लाली दूर नहीं हुई है। जो दवा आपको बताई गई है, वह बराबर इसकी आंखों में डालते रहिए।

मेरी राय में इसकी दूसरी आंख का ऑपरेशन पंद्रह दिन बाद करना ठीक होगा।'

'तो फिर हम लोग पच्चीस तारीख तक फिर आ जाएं।'

'जी हां, आज आप डिस्चार्ज टिकट लेकर जा सकते हैं।'

'बहुत अच्छा।'

लेकिन डॉक्टर साहब ! क्या आपकी राय में पिछले ऑपरेशन से कोई फायदा नहीं हुआ, जो मैंने इलाहाबाद में डॉ० नाथ से कराया था ?'

'फायदा ? अजी जनाब, उसने तो केस और भी बिगाड़ दिया। अगर आप सीधे यहां आए होते, तो मैं आपको कुछ गारंटी भी दे सकता था, मगर अब''''खैर''' देखिए। अब मैं एक-दो ऑपरेशन करने के बाद ही कुछ कह सकता हूं।'

'अच्छी बात है ! लेकिन क्या आप समझते हैं, कितनी उम्मीद है ?'

'देखिए ! मैंने इस केस को ठीक से समझने की कोशिश की है। मेरा ऐसा ख्याल है कि इसकी आंखों में शुरू से ही आइ-राइटिस और कैटेरैक्ट की बीमारी थी। आप कहते हैं कि आपने इलाहाबाद में डॉ० नाथ को दिखलाकर उनसे इसकी दोनों आंखों का ऑपरेशन करवाया था। मैं जहां तक समझ पाया हूं, इस ऑपरेशन से इसकी आंखों को कोई फायदा नहीं हुआ है, उल्टे और भी ज्यादा कांप्लीकेशन पैदा हो गया है।'

'जी''' !'

'अब मैं समझता हूं कि चार-छः नीडलिंग ऑपरेशन करने के बाद ही कुछ मालूम हो सकेगा।'

'अच्छी बात है, तो मैं पच्चीस तारीख को आ जाऊंगा।'

रीति की कमज़ोरी धीरे-धीरे दूर हो रही है····

वह अलमारी टटोलकर अपना खिलौना ढूंढ़ रही है। सवेरे उसने उसे सम्हालकर अलमारी में रख दिया था।

एक-एक चीज पर उसका हाथ छू रहा है···ये अम्मा का सैंडिल है, यह भइये का जूता है, यह पापा का स्लीपर है, ये मोजे, यह ब्रश, यह जूते का डिब्बा···अपने स्वभाव के अनुसार वह डिब्बे को खड़-खड़ा कर देख लेती है।

नहीं, इस खाने में नहीं है। वह अलमारी के दूसरे खाने में टटोलती है। पापा के दाढ़ी बनाने वाले सामान का डिब्बा रखा हुआ है, तेल की लंबी बोतल और छोटी-छोटी तमाम शीशियां, उसका हाथ लगने से शीशियां आपस में खड़खड़ा उठती हैं। वह सहमकर हाथ खींच लेती है।

इस खाने में भी नहीं है। वह अलमारी के सहारे से टिककर खड़ी हो जाती है और ऊपर वाले खाने में देखती है। यह बिस्कुट का डिब्बा, यह चाय की केटली, यह, यह····

एक आवाज के साथ एक बड़ा डिब्बा ज़मीन पर गिरता है। उसका ढक्कन खुल जाता है और कोई चीज़ बिखर जाती है। फीकी, स्तब्ध आंखों से ताकती हुई वह जमीन पर बैठ जाती है और घूरते हुए शक्कर के ढेर में अपनी उंगली छुआकर चाटती है।

शक्कर है····मां मारेगी।

उसकी छोटी-छोटी हथेलियां हिलती हैं। वह मुट्ठी भर-भरकर डिब्बे में शक्कर रखना चाहती है। शक्कर ज़मीन पर और भी छितराती जाती है।

मां के पैरों की आहट होती है। वह शान्त हो जाती है और अपना हाथ खींच लेती है। सहमी आंखों से मां की आती हुई

छाया को देखकर वह प्रतीक्षा करती है—अब मम्मी ने मारा, अब मम्मी ने मारा···

'शक्कर का डिब्बा फेंक दिया मरी ने !'

'तड़ाक्' एक तमाचा उसके गाल पर पड़ता है। वह पूरी शक्ति से चिल्लाकर रोने लगती है।

वह रोती-टकराती पापा के पास भागना चाहती है।

फौरन ही उसे पापा द्वारा गोद में उठा लिया जाता है। वह निर्भय हो जाती है। उसका रोना कम होने लगता है। अब उसे मम्मी और नहीं मार सकती।

उसकी आंखों में भरे हुए आंसू सूखने लगते हैं। वह अपनी दोनों हथेलियों में लगी हुई शक्कर जीभ निकालकर चाटने लगती है।

५

इधर कुछ समय से रीति को ऐसा लगता है, जैसे मम्मी अब उसको कम गोद में लेती हैं। अब वह उसे अपने से सटाकर सुलातीं भी नहीं, दूर ही लिटाकर थपथपा देती हैं। वह अक्सर अपनी मम्मी को कराहते भी देखती है। रीति को बहुत आश्चर्य होता है और वह सहमकर रह जाती है, क्या तकलीफ है मां को ?

उसे लगता है कि अब उसकी मम्मी का पेट बढ़ गया है। कभी-कभी वह मम्मी का पेट टटोलकर भी देखती है···

रीति रो रही है। वह मम्मी की गोद में जाने के लिए ज़िद कर रही थी। उन्होंने उसे झिड़ककर अलग कर दिया है।

'आओ रीति।' उसकी दादी उसे गोद में उठाकर पुचकारती हैं, 'आओ! हम तुम्हें गोदी में लें।'

रीति उनकी गोद में जाकर चुप हो जाती है और स्थिर दृष्टि से शून्य में ताकने लगती है।

'तुम्हारा भइया आने वाला है।' दादी उसे समझाती हैं, कान में फुसफुसाकर, जैसे भेद की बात हो।

रीति कुछ नहीं समझ पाती। भइया आने वाला है ? कहां से ? कैसे ? कैसा भइया ! जैसा अशोक है ? जैसा विमल है ? जैसा···

तमाम छोटे बच्चों की धुंधली आकृतियां उसकी फीकी आंखों के सामने घूमने लगती हैं....

वह भइये के आने की प्रतीक्षा करने लगती है—उत्सुकता से।

रीति की मम्मी अब ज्यादातर पलंग पर ही लेटी रहती हैं। कभी-कभी धीमी आवाज़ में कांखती हैं। रीति ने अब रोना कम कर दिया है। अब वह मम्मी की गोद में जाने के लिए बहुत ज़िद भी नहीं करती। वह घंटों मम्मी के पास बैठी रहती है—चुपचाप। सहानुभूतिपूर्ण मुद्रा में उनकी ओर ताकती रहती है। आखिर भइया आ रहा है, तो इसमें परेशानी की क्या बात है? क्या मम्मी को किसीने मारा है? क्या वह भूखी हैं? क्या वह कहीं से गिर पड़ी हैं? क्या उनके कहीं चोट लग गई है?

एक बार मम्मी को रीति की सहानुभूतिपूर्ण शांत मुद्रा देखकर तरस आ जाता है। वह कराहती हुई उसे पुकारती है—'रीति!'

रीति चौंकती है। शायद मम्मी का दर्द कुछ कम है। वह उनके मुंह की तरफ ताकने लगती है।

'रीति!' मम्मी फिर उसी आवाज में कहती हैं।

'हां!' रीति पूछती हैं, 'तुम्हें क्या हुआ है?'

मम्मी थकी हुई हंसी हंसती हैं, फिर दोहराती है—'रीति!'

'हां!' रीति तत्परता से उत्तर देती है।

'तुम्हारे एक छोटा-सा भैया आने वाला है।'

रीति की कल्पना फिर जाग्रत होती है—'भैया?'

'हां।'

'मुन्ना-सा?

'हां !' मां बड़े कष्ट से बोल पाती हैं।

रीति के चेहरे पर एक चमक घूम जाती है। वह कौतूहलभरी कल्पना में डूबने-उतराने लगती है। उसका भी भैया आने वाला है, जैसे और सबके भैये हैं, छोटे-छोटे, मुन्ने-मुन्ने....

सहसा मम्मी उसका हाथ पकड़कर अपने पेट पर रख लेती हैं और दबाने लगती हैं। रीति को अजीब-सा मालूम होता है—भरा-भरा, फूला-फूला, कड़ा-कड़ा, पत्थर जैसा पेट...

मम्मी फिर कराहती है।

क्या मम्मी के पेट में दर्द है ?

'कहां है भैया ?' एकाएक रीति पूछती है।

'पेट में है रीति !' मां की आवाज़ क्षीण हो जाती है।

रीति के चिन्तन को काफी सामान हो जाता है।

आधी रात को रीति की आंख खुल जाती है। मां उसके पलंग पर नहीं है। दूसरे पलंग से उनके कराहने की आवाज़ सुन पड़ रही है। उसका कलेजा दहलने लगता है। रात के सन्नाटे में मां की कराह से उसे डर लगता है—'मम्मी !'

धीरे-से हाथ बढ़ाकर पापा उसे उठा लेते हैं। अपनी गोद में उसे लिटा लेते हैं।

आजकल सारी-सारी रात पापा मम्मी के पास बैठे रहते हैं। उनका फिरता हुआ हाथ रीति अनुभव करती है। वह मम्मी का पेट सहला रहे हैं। मम्मी को चुपा रहे हैं। परन्तु वह नहीं चुपतीं। सिसकियां लेती हैं, कराहती हैं....धीरे-धीरे...

दो दिन से रीति अपनी बुआ के पास रह रही है। वही उसे अपने

पास सुलाती हैं, वही सवेरे उसका हाथ-मुंह धुलाती हैं, वही उसे नहलाकर नये-नये कपड़े पहनाती हैं, वही उसके मुंह पर पाउडर लगाकर उसकी आंखों में दवाई लगाती हैं, वही उसके बाल संवारकर उसकी चोटी में नाइलॉन का रिबन डालकर फूल बनाती हैं और वही उसे अपने पास बैठाकर रोटी खिलाती हैं।

दिन में जब बुआ कॉलेज पढ़ने चली जाती हैं, तब वह दादी के पास रहती है। शाम को जब वह लौटकर आती हैं, तब सबसे पहले रीति को आवाज़ लगाती हैं। रीति जहां कहीं भी होती है, 'बुआ-बुआ' कहती हुई उनके पास दौड़ आती है। अपनी किताबें मेज पर पटककर वह दोनों हाथ पकड़कर रीति को टांग लेती हैं, और घुमाकर नचाती हैं। फिर एक बार ज़ोर से ऊपर उछालकर गेंद की तरह गोदी में गोच लेती हैं।

फिर रीति बुआ के साथ चाय पीती है, टोस्ट खाती है। फिर रेडियो बजाती हैं बुआ। रीति गाने सुनती है। फिर रात को बुआ खाना खाकर पढ़ने बैठ जाती हैं और रीति धीरे-धीरे सो जाती है।

'बुआ ?' बुआ के पास सटकर लेटी हुई रीति अचानक बोल उठती है।

'क्या है रीति ?' बुआ उसे और भी सटाकर पूछती है।

'मम्मी कहां गई हैं ?'

'अस्पताल।'

'कब आएंगी ?'

'कल।'

रीति के कलेजे की धड़कन तेज़ हो जाती है। मम्मी भी अस्पताल गई हैं, जहां रीति कई बार रह आई है। रीति के सुई लगाई जाती

थी, आंखों पर पट्टी बांधी जाती थी, दर्द होता था। मम्मी के भी सुई लगाई जाएगी, आंखों पर पट्टी बांधी जाएगी, दर्द होगा....

'बुआ ?'

'हां रीति'

'मम्मी को क्या हुआ है ?'

'मम्मी के पेट में दर्द हो रहा था बड़े जोर से, वह अस्पताल गई हैं।'

'कब आएंगी अस्पताल से ?'

'जल्दी से उनके पेट का दर्द ठीक हो जाएगा फिर आएंगी !'

'मम्मी अपने साथ क्या लाएंगी ?'

'मुन्ना-सा भैया लाएंगी रीति के लिए ! रीति अपने भैये को प्यार करेगी, गोदी में खिलाएगी, शीशी से दूध पिलाएगी....

रीति की आंखों के सामने एक चित्र बनता है—

रीति दादी बनी बैठी है, उसकी गोदी में उसका छोटा-सा भैया है, वह रो रहा है, रीति उसे चुपा रही है, हिला रही है, प्यार कर रही है, झुला रही है, नचा रही है—और वह अब हंस रहा है, भैया, रीति का मुन्ना-सा प्यारा-प्यारा भैया !...

रीति की मम्मी घर आ गई हैं। सवेरे से ही उनके आने का हल्ला हो रहा था।

रीति भागी-भागी कमरे में पहुंचती है और मम्मी की गोदी में कूदकर गिर जाना चाहती है, लेकिन दादी उसे बीच में ही रोक लेती हैं और अपनी गोद में उठा लेती हैं।

रीति सूखी दृष्टि से देखना चाहती है—कमरे के एक कोने में

बिछे हुए पलंग पर मम्मी लेटी हैं। दूसरे सभी लोग अलग खड़े हुए उन्हें देख रहे हैं।

'मम्मी !' रीति पुकारती है—यह जानने के लिए कि वह स्त्री मम्मी ही है, जो पलंग पर लेटी है ?

'हां, रीति !' मम्मी का क्षीण स्वर उसके कानों में पड़ता है।

रीति चौंकती है। मम्मी की आवाज़ इतनी दुबली क्यों है ? क्या मम्मी के भी अस्पताल में सुई लगाई गई थी ? उसकी भी आंखों पर पट्टी बांधी गई थी ? उसके भी दर्द हुआ था ?

'मम्मी !' उसकी आवाज़ रोती है। वह बांहें फैलाकर मम्मी के पास जाना चाहती है।

दादी उसे बहलाकर अलग ले जाती हैं—'अभी मम्मी से मत बोलो। अभी मम्मी के मिट्टी लगी है। जब मम्मी नहा लेगी, तो उसके पास जाना। अभी मम्मी के दर्द हो रहा है। मम्मी के साथ तुम्हारा मुन्ना भैया भी आया है। अभी वह सो रहा है। तुम रोओगी तो वह जाग जाएगा। फिर रोने लगेगा। अभी थोड़ी देर बाद वह उठेगा, तब तुम उसे गोदी में लेना। शीशी में दूध पिलाना। तुम्हें वह बहिन जी पुकारेगा। अभी तुम बुआ के पास जाकर बाजा सुनो।'

और बुआ रीति को गोद में लेकर रेडियो के पास चली जाती हैं।

'मम्मी !' रीति पुकारती है।

'हां !' उत्तर मिलता है।

'हम तुम्हारे पास आएंगे।' वह मचलती है।

'हमारे पास अभी मत आना। अभी हम गन्दे हैं। जब हम नहा लेंगे, तब आना। अभी हमारे पास आओगी, तब तुम्हें फ्रॉक धोनी पड़ेगी और दादी तुम्हें भी नहला देंगी।'

'अच्छा, हमें भइये को दे दो ।'

'अभी भइया सो रहा है ।'

'हम ऐसे ही लेंगे !'

'नहीं, ऐसे नहीं लेते । ऐसे लोगी, तो जाग जाएगा और रोने लगेगा ।'

रीति कल्पना कर रही है—उसका गोरा-गोरा मुन्ना-सा भइया, पलंग पर सो रहा है, आंखें बन्द किए हुए, गहरी नींद में''''।

आज रीति किसीके समझाने से नहीं मानती । बराबर जिद करती रहती है । अन्त में, हारकर दादी उसकी फ्रॉक खोल लेती हैं और वह मम्मी के पास पहुंच जाती है । मम्मी उसे अपने पलंग पर बैठा लेती हैं और भइये को उसकी गोद में दे देती हैं । रीति अपनी टांगों पर भइये के शरीर का गिलगिलापन अनुभव करती है । उसे गुदगुदी लगती है, वह हंसती है और उसे समेटकर ठीक से गोद में लेना चाहत

भइया कसमसाकर रोता है । रीति को यह भी अच्छा लगता है । 'कैंओ-कैंओ' की आवाज़ उसके मुंह से बड़ी अच्छी लगती है । रीति उसके रोने की परवाह नहीं करती । 'आऽ, आऽ' कहकर उसे चुपाती है ।

वह उसके बाल छूकर देखती है—जिनमें वह तेल डालेगी, रिबन लगाएगी, और फिर चोटी करेगी, उसका माथा छूती है—जहां वह बिन्दी लगाएगी, आंखों को उंगली से टटोलती है—जिनमें वह काजल लगाएगी, गुलगुले गाल छूती है—जहां वह पाउडर लगाएगी—उसका मन हुलसने लगता है !

उसका छोटा-सा भइया, मुन्ना-सा !

मम्मी भइये को दूध पिला रही हैं, एक कटोरी में दूध रखा हुआ है, उसीमें एक चम्मच है और कपड़े की एक पतली तहाई हुई बत्ती भी पड़ी हुई है।

'कंआो, कंआो' करता हुआ भइया रो रहा है। जब-जब दूध उसके मुंह में पड़ता है, तब-तब ज़रा देर के लिए उसका रोना बन्द हो जाता है और उसके बाद फिर चालू।

रीति अनुभव करती है कि उसका भइया कितना ज़्यादा भूखा है। अगर वह मम्मी होती, तो एक ही बार में उसे पतीली भर दूध पिला देती। गरम-गरम, शक्कर पड़ा हुआ दूध ! और न जाने क्यों उसे खुद भूख लग आती है—'मम्मी ! हम भी दूध पिएंगे !'

सारा दिन तमाम औरतें आया करती हैं। हर औरत रीति से पूछती है—

'रीति ! तुम्हारे क्या हुआ है ?'

'हमारे भइया हुआ है।' निश्चयात्मक स्वर में रीति उत्तर देती है।

हंसी का एक ठहाका लगता है और दूसरा प्रश्न होता है—'कैसा है तुम्हारा भइया ?'

'गोरा-गोरा !' पुनः वह दृढ़ता से उत्तर देती है।

'हम तुम्हारे भइये को अपने घर ले जाएं ?' फिर पूछा जाता है।

'नहीं !' वह कठोरता से निषेध करती है। स्त्रियों की गूंजती हंसी के साथ ही उसका कलेजा शंकित हो जाता है। उसकी फीकी, अशक्त दृष्टि, मम्मी के पलंग और प्रश्न करने वाली स्त्री के बीच भटकती है—कहीं यह सचमुच तो उसके भइये को अपने घर नहीं ले जा रही हैं !

भइया अकेला पलंग पर सो रहा है। कोई उसके पास नहीं है। रीति धीरे-धीरे पलंग के पास पहुंचकर उसका सारा शरीर हाथ से टटोलकर देखती है।

'भइये !' अपने हृदय के सारे स्नेह से पुकारती है रीति।

भइया कुछ जवाब नहीं देता। रीति प्रतीक्षा करने के बाद फिर पुकारती है—'मेरे मुन्ने भइये !'

भइया फिर कुछ नहीं बोलता।

'हमें 'बहिन जी' पुकारो !' रीति अपनी अभिलाषा प्रकट कर देती है।

भइया फिर चुप रहता है।

'हमें 'बहिन जी' पुकारो !' वह भइये को हिलाती है। भइया जाग जाता है और रोने लगता है।

'जगा दिया, मरी ने उसको।' मम्मी आकर डांटती हैं।

रीति उदास मुंह लेकर टुकुर-टुकुर ताकने लगती है।

'भइये को लेगी ?' मम्मी तरस खाकर पूछती हैं।

'नहीं, हम इसे नहीं लेंगे। यह हमें 'बहिन जी' नहीं पुकारता।'

'पुकारेगा। अभी यह छोटा है। जब बड़ा हो जाएगा, तब तुम्हें बहिन जी पुकारेगा !'

रीति का भइया अब कपड़े की बत्ती और चम्मच से दूध नहीं पीता, शीशी से पीता है। कांच की शीशी में, उसका एक मुंह कार्क से बन्द करके, गरम दूध भर दिया जाता है। फिर उसके दूसरे मुंह में रबड़ का निपुल लगा दिया है। रीति सम्हलकर पलंग पर बैठ जाती है। उसकी गोद में भइये को लिटा दिया जाता है। फिर शीशी रीति के हाथ में पकड़ाकर निपुल भइये के मुंह में दे दिया जाता है।

भइया चपर-चपर करके दूध पीने लगता है। रीति को अच्छा लगता है। वह देखना चाहती है कि वह निपुल को कैसे चूसता है, जो इतनी अच्छी आवाज़ निकलती है। शीशी के सहारे वह अपनी उंगली निपुल तक ले जाती है और उसके दोनों होंठों के बीच चुसते निपुल को भरते-निचुड़ते अनुभव करती है। फिर धीरे से वह शीशी अलग खींच लेती है भइये के मुंह से। भइया रोता है और अपना सिर इधर-उधर मचलाने लगता है।

'अच्छा ! ले, ले ! अभी और भूखा है।' रीति फिर उसके मुंह से निपुल लगाकर उसे चुपा लेती है, सन्तोष के साथ।

रीति का भइया ज़रा देर भी चुपचाप नहीं लेटता। बड़ा शरारती है। गोदी के लिए मचलता है और न लेने पर गला फाड़कर रोने लगता है। अब उसे शीशी से दूध पिलाना भी रीति के बस की बात नहीं रह गई है। वह बार-बार हाथ मारकर शीशी अलग फेंक देता है। कई शीशियां इसी तरह चटाक्-चटाक् तोड़ भी चुका है।

यही नहीं, अब जब रीति उसका दुलार करती है, तब वह उसके भी लातें मारने लगता है।

'मम्मी !' रीति शिकायत करती है—'देखो भइया लात मार रहा है !'

'लात थोड़े ही मार रहा है', मम्मी रीति को समझाती हैं—'यह तो गाड़ी चला रहा है।'

रीति का स्नेह उमड़ता है—'अच्छा, चला-चला !'

और वह ध्यान से उसकी चलती हुई लातों को देखने लगती है।

कमरे में पलंग पर भइया पड़ा सो रहा है। रीति उसके पास

बैठी है। अकेले में भइया डरे न, इसलिए। सब लोग नीचे हैं। रीति की ममत्व-भावना करवट बदलती है। वह सरककर भइये के और भी निकट हो जाती है और झुककर उसका चेहरा देखने की कोशिश करती है। धुंधला-धुंधला-सा कुछ लगता है। उसकी सांस लेने की आवाज़ रीति सुनती है। धीरे से अपनी हथेली उसके पेट पर रख देती है और उसका उठना-गिरना अनुभव करती है।

उसकी आकृति को ठीक से समझ पाने के लिए वह आंखों पर ज़ोर देती है। वह उसके चेहरे पर एक-एक भाग टटोलकर देखती है—बाल, माथा, आंखें, गाल, नाक, मुंह''''उसकी नाक के दोनों छेदों को बार-बार छूना उसे अच्छा मालूम होता है। वहां उंगलियां लगाते ही भइया ज़ोर से कांपकर हिलता है, चौंकता है और फिर चुप रह है।''''रीति बार-बार यही करती है।

अन्त में, भइया जाग उठता है। पहले रोता है और फिर धीरे-धीरे किलकारियां मारने लगता है, अपने हाथ हिलाने और पैर पटकने लगता है। रीति कौतूहल से झुककर उसका चेहरा ताकती है, उसकी चमकीली आंखों को देखने की कोशिश करती है। फिर उसकी आंख में उंगली डालकर देखती है—वह ज़ोर से चीखकर रो पड़ता है।

मम्मी के बिगड़ने की आवाज़ सुनाई पड़ती है। अपराधी की तरह रीति सहमकर भइये को चुपाने लगती है—'ले, ले, रो नहीं, आ आ'''!'

६

पापा और दीदी में सवेरे कुछ बातचीत हुई थी। पापा नाराज होकर बिना कुछ खाए-पीए दफ्तर चले गए हैं।

'ऐ बता !' दादी बड़ी बहू से कहती हैं—'कि मैंने कुछ गलत कहा ? सात ऑपरेशन जरा-सी फितनियां की आंखों में हो चुके। मरे डॉक्टरों ने चक्कू चला-चलाकर उसकी आंखें फोड़ डालीं, सुई भोंक-भोंककर बिचारी का बदन छलनी कर डाला। भला कोई हद है !'

'हां, भाभी !' बड़ी बहू सहमत होती हुई कहती हैं—'ऑपरेशन तो इसकी आंखों में निरे हो गए। राम जी चाहेगा तो खुदी उसकी आंखों में धीरे-धीरे रोशनी आ जावेगी।'

'नहीं, मैं यह कब कहती हूं कि तुम इसकी आंखों में कुछ मत डालो ? डालो जरूर, लेकिन जो चीजें डालने की हैं, वो डालो। न जाने कितने बार कहा कि इसकी आंखों में काली महारानी का नीर डालो। काली महारानी चाहेंगी, तो जल्दी ही दोनों आंखों में रोशनी आ जाएगी।'

'हां, भाभी। सुना तो है कि काली जी का नीर डालने से कइयों की आंखों में रोशनी आ गई है !'

'अरे और नहीं तो क्या सब कुछ इन्हीं मरे डॉक्टरों के हाथ में

है ?' दादी ऊंची आवाज में रीति की मम्मी से कहती हैं—'वहू ! ला, जल्दी से लड़की को कपड़े पहना दे, मैं तो उसे जाके काली जी के चरनों में ही डाले देती हूं कि हे काली महारानी ! तुम्हीं इसकी आंखें ठीक करो। और रोज़ देवी जी का नीर इसकी आंखों में डालो। देखूं कैसे नहीं फायदा होता है।'

रीति की मम्मी अस्पताल जाने के लिए रखे गए कपड़े आदि हटा-कर अलग रख देती हैं। रीति को दादी की गोद में दे दिया जाता है। वह चादर ओढ़ उसे गोद में ले निकल पड़ती हैं।

गरमी इधर बढ़ गई है। सारा घर ठंडा है। कमरों में पंखे छत पर टंगे सरसराहट पैदा कर रहे हैं। रीति की नींद अभी-अभी खुली है।

सबसे पहले अकेले होने की आशंका से वह डरती है। लेकिन निकट ही लेटी हुई मम्मी की सफेद धोती अंधेरे में भी चमकती है। सन्देह दूर करने के लिए वह धीरे से मम्मी का स्पर्श करती है, फिर आश्वस्त होती है।

उसका छोटा-सा मुंह फैलता है। उबासी लेने के साथ ही उसका सारा शरीर हरकत करता है। वह उठकर बैठ जाती है और पंखे द्वारा उत्पन्न होती हुई अनरवत ध्वनि से परे कुछ सुनने का प्रयत्न करती है।

उसे भूख लगती है। वह दूध पीना चाहती है, मगर नहीं मांगती। क्योंकि वह जानती है कि उसकी मम्मी को दिन में देर तक भी सोने की आदत है और दूध मांगने पर वह पीटेगी। अपनी नींद में बाधा पड़ने पर वह झल्ला उठती है।

सहसा उसके कानों में बाहर खेलते हुए बच्चों का शोर पड़ता है। सभी खेल रहे हैं, कूद रहे हैं, दौड़ रहे हैं, भाग रहे हैं। कितना सुख, स्वतन्त्रता…

बहुत धीरे से वह उठती है और अस्थिर पैरों से दरवाजे तक जाती है। फिर दरवाजा खोलकर बाहर आ जाती है और स्वतंत्रता अनुभव करती है।

बाहर की धूप की तीखी चमक उसकी आंखों में चुभती है।

'होऽऽऽ ओ। बच्चे सहन में कुत्ते के पिल्ले के साथ खिलवाड़ कर रहे हैं। उसके शरीर में उत्साह की लहर दौड़ती है, वह भी पुलकती हुई उनमें सम्मिलित हो जाती है। उसके पैरों में गति आ जाती है।

बच्चे घेरे में नाच रहे हैं, उछल-कूद कर रहे हैं—पिल्ले को घेरकर।

वह भी उन्हींकी तरह शोर करती हुई कूद रही है, मगर एक निश्चित घेरे में और प्रतिपल एक सहमाने वाली आशंका से कम्पित···

पिल्ले की पूंछ पकड़कर अशोक घसीट रहा है, दूसरे बच्चे ताली बजा रहे हैं।

एक छोटी काली छाया के समान चलता-फिरता, भागता-दौड़ता पिल्ला उसे आकर्षित करता है। वह भी आगे बढ़ती है।

अशोक के हाथ से पूंछ छुड़ाकर पिल्ला गली में भागता है। बाल-दल भी द्रुतगति से चीखता-चिल्लाता उसका पीछा करता है।

सबसे पीछे रीति दौड़ती है। दूसरे बच्चों की चुस्त और सधी हुई दौड़ उसे पीछे छोड़ देती है, दरवाजे की चौखट से टकराकर वह रुक जाती है।

कभी कोई सीमा स्वीकार न करने वाली रीति एक विवश पीड़ा से व्यथित हो उठती है—आगे कुछ भी हो सकता है—दीवार, सीढ़ी, कीचड़, नाली, गढ़ा···

वह टटोलकर पीछे लौट आती है, उदास ! धीरे-धीरे अपने कमरे में वापस आती है। मम्मी अभी तक उठी नहीं है।

उसे फिर भूख लगती है। दूध के मीठे स्वाद की कल्पना उसे रोने-मचलने को विवश कर देती है—दूध, दूध !

अशोक, विमल, उषा और उमा के साथ रीति खेल रही है—

'टिप्-टिप्-टिप् !' अशोक ऊंची आवाज में कहता है।

'कौन आया ?' विमल, उषा और उमा पूछती हैं।

लंगड़ी-पुतंगड़ी का भाई आया !'

'क्या लेने ?' तीन शिशु-कंठ पूछते हैं।

'आलू-टमाटर !' अशोक फिर उत्तर देता है।

और इस उत्तर के साथ ही चारों की मिली-जुली खिलखिलाहट गूंजती है और खेल खत्म हो जाता है।

अब बारी-बारी से विमल, उषा और उमा 'टिप्-टिप्-टिप्' कहती हैं और बाकी लोग प्रश्न करते हैं। खेल चलता रहता है।

हल्की खिलखिलाहट को भंग करते हुए सहसा रीति के पापा का स्वर सुनाई पड़ता है—

'टिप्-टिप्-टिप् !'

सब चौंककर पापा की ओर देखने लगते हैं। रीति भी उंगली से छूकर उनकी उपस्थिति का अनुभव करती है।

दूसरे ही पल चारों बच्चे मिलकर चिल्लाते हुए प्रश्न करते हैं—

'कौन आया ?'

'लंगड़ी-पुतंगड़ी का भाई आया !' पापा उत्तर देते हैं।

बच्चों को खुशी होती है। यह जानकर कि इनको भी खेल आता है। वे और उत्साह से आगे परीक्षा लेते हैं, अधिकारी स्वर में—

'क्या लेने ?'

'आलू, टमाटर, गोभी।' पापा का उत्तर मिलता है।

खिलखिलाहट फूट पड़ती है। पापा ने 'गोभी' अपनी तरफ से

लगा दिया—खिल-खिल-खिल !

पुनः रीति की ऊंची आवाज़ सुनाई पड़ती है—

'टिप्-टिप्-टिप् !'

और पापा सहित सब लोग सम्मिलित स्वर में प्रश्न करने लगते हैं.......

'फड़-फड़-फड़-फड़ !' बड़ी कौतूहलजनक आवाज़ उत्पन्न करती हुई कोई वस्तु लम्बी छत पर इधर से उधर उड़ती है।

'कबूतर-कबूतर !' बच्चे चीखते हैं। अशोक झपटकर कबूतर को दोनों हाथों से कसकर गोद में उठा लेता है और रीति को दिखाने लगता है। रीति धीरे से उसे छूकर देखती है। कबूतर पंख सिकोड़ता है। रीति को अजीब-सा लगता है। वह उसे गोद में लेने से डरती है। लेकिन दूसरे बच्चे कबूतर को अपनी गोद में लेने के लिए आपस में लड़ते-झगड़ते हैं। 'हम लेंगे, हम लेंगे' का शोर मचता है। उनमें आपस में छीना-झपटी होती है। कभी उनमें से कोई रोने भी लगता है। रीति को आश्चर्य होता है। क्या कबूतर को गोद में लेना इतना अच्छा है...।

सब बच्चे नीचे खाना खाने चले गए हैं। रीति उदास, उकताई, थका-सी छत पर बैठी है, कोने में। हाथ का बिस्कुट कभी का खत्म हो चुका है। एक बार वह फिर से अपनी उंगली चाटकर उसके स्वाद को याद करती है।

धीरे से कोई चीज़ उसके सामने से जैसे रेंगती हुई निकल जाती है। वह चौंकती है। आंखें फैलाकर घूरती है—

'कबूतर !'

अब सब बच्चों के नीचे चले जाने पर कबूतर स्वतन्त्रता से छत पर विचर रहा है।

कबूतर के लिए दूसरे बच्चे आपस में लड़ते हैं। कबूतर बहुत अच्छी चीज़ है। उसे गोद में लेना चाहिए।

रीति धीरे-से उठती है, उसके पीछे-पीछे चलती है, लपककर उसे पकड़ना चाहती है, परन्तु कबूतर और भी तेज़ चलने लगता है।

रीति के मुंह पर एक फीकी मुस्कुराहट आती है। सचमुच यह एक मज़ेदार चीज़ है। वह एकाएक उसपर झपट पड़ती है। उसका हाथ कबूतर की पीठ से छूता हुआ फिसलकर रह जाता है। वह हताश होने लगती है।

...सहसा कोई आकर कबूतर को पकड़ लेता है और सम्हालकर रीति के हाथों में पकड़ा देता है।

कबूतर को मज़बूती से पकड़ते हुए रीति घूरती है—कौन? पापा? तब तो उसे उनकी गोदी में जाने के लिए रोना-मचलना चाहिए, नहीं तो पापा चले जाएंगे।—मगर कबूतर? ओह कितना मुलायम, गिलगिला, चिकना, अपनी गरदन इधर से उधर हिलाता है, नचाता है, अपना बदन सिकोड़ता है, उड़ने के लिए फड़फड़ाता है।

उसकी हरकतें रीति को पसन्द आती हैं। वह खुशी से भरकर उसे और भी मज़बूती से जकड़ लेती है।

'टक्-टक्-टक्-टक्...ए ऽ ऽ ऽ...ये पीटा!'

बड़ी आकर्षक आवाज़ होती है। छनछनाते हुए शीशे के रंग-बिरंगे कंचे मुट्ठी में नचाकर फेंकते हैं, फिर दो कंचों को आपस में पीटकर 'टक्-टक्' की आवाज़ करते हुए ठांय से पीट देते हैं।

रो-मचलकर दो कंचे रीति भी प्राप्त कर लेती है—एक गहरा लाल

धारीदार और दूसरा पीला।

'टक्-टक्-टक्-टक्' करके रीति भी एक कंचा फेंकती है, पीटने के लिए; परन्तु हाथ से एक बार फेंकने के बाद उसके लिए दोबारा कंचा ढूंढ़ना एक समस्या हो जाता है।

वह बहुत प्रयत्न करती है उसे ढूंढ़ने की, आंखों पर जोर देकर चारों तरफ ज़मीन पर टटोलती है, मगर कंचा नहीं मिलता।

स्तब्धताभरी निराशा उसके छोटे-से चेहरे पर छा जाती है।

जाने किधर से पापा आ जाते हैं और कंचा उठाकर उसके हाथ पर रख देते हैं। उसे मना कर देते हैं कि हाथ में ही रखकर कंचे बजाओ, हाथ से फेंको मत।

लेकिन ऐसे आदेश-निर्देश वह प्रायः नहीं मानती। और फिर कंचे का मजा तो उसे टनटनाकर पीटते हुए फेंकने में ही है।

हर बार पापा झुंझलाते हैं, मना करते हैं और खीझकर झटके के साथ उसके हाथ पर कंचा रख देते हैं। थोड़ी देर वह उसे टन-टनाती है और अन्त में फिर फेंक देती है। कंचा हाथ से छूटते ही वह विवश भाव से अपनी सहमी हुई दृष्टि नचाने लगती है, प्रतीक्षा करने लगती है और पापा की परछाईं हिलते देखकर अपना छोटा-सा हाथ फैला देती है''''उसपर कंचा रख दिया जाता है—अगली बार फेंकने के निषेध के साथ, लेकिन कितना प्रबल आकर्षण है''''

'ए ऽ ऽ टक्-टक्-टक्-टक्'''वो पीटा!'

'खरगोश, खरगोश!' घर के तमाम बच्चे कल्ला फाड़कर चीखते हैं और खरगोश का पीछा करते हैं—वह फुदकता हुआ इस-उस कोने में भागता है।

कौतूहल से भरी हुई रीति अपने सूने नेत्र उठाकर पूरी शक्ति से

घूरने का प्रयत्न करती है।

यहीं खरगोश है। सफेद रुई की पुटलिया जैसा, हिलता-घूमता-चलता-सा !

'ख़रगोश ! खरगोश !' वह भी गला फाड़कर किलकती है।

'खरगोश लेंगे।' बहुत प्रयत्न करने पर भी जब खरगोश उसके हाथ नहीं आता, तो वह रूठकर मचलती है।

पापा के द्वारा खरगोश उसके दोनों हाथों में दे दिया जाता है। खुशी से छलककर वह उसे थाम लेती है।''''मुलायम, गिलगिले, थल-थल, चिकने, रेशमी शरीर वाला खरगोश !

बड़ा कठिन हो जाता है उसके लिए अपनी प्रसन्नता को दबाना। वह उसे उछालती है, कुदाती है, नोंचती है, दबाती है और उसके कान उमेंठती है, जो उसे उसके शरीर के सभी अंगों से अधिक प्रिय लगते हैं। कभी-कभी उसकी इस हरकत से पीड़ित खरगोश चिल्लाकर कूं-कूं करने लगता है। रीति को उसकी वह आवाज़ बहुत अच्छी लगती है। वह उसे फिर सुनना चाहती है, बार-बार सुनना चाहती है, लेकिन खरगोश तब तक यह मोहक स्वर नहीं उत्पन्न करता, जब तक उसके कान न नोंचे जाएं। रीति फिर कान नोचती है, वह फिर कूं-कूं करता है।

रीति सन्तुष्ट हो जाती है, क्योंकि वह उससे यह स्वर उत्पन्न कराने की विधि से परिचित हो गई है।

अब खरगोश रीति के लिए बहुत ही प्रिय बन गया है। वह प्राय: दिनभर उसे लिए रहती है। जब वह उसके पास नहीं रहती है, तब खरगोश को बड़ी हिफाजत से रखा जाता है। महीन, लम्बी घास के अलावा तमाम तरह की तरकारियों के छिलके उसके छोटे

दरबे में भरे रहते हैं, उसकी खिड़की का दरवाजा ज़रा देर के लिए भी खुला नहीं रखा जाता।

'बिल्ली आ जाएगी, खरगोश को खा जाएगी।'

रीति को बिल्ली पर क्रोध आता है। यों वह बिल्ली को पसन्द करती है, उसका नाम सुनकर खुश होती है। लेकिन अगर वह खरगोश को मारकर खा जा सकती है, तो वह अच्छी नहीं हो सकती है। वह खरगोश को निर्भय करने के लिए ज़ोर से अपनी छाती से चिपका लेता है।

लेकिन एक और विचार उसके मस्तिष्क में कौंधता है—अगर बिल्ली उसे खा सकती है तो उससे पहले रीति ही उसे क्यों न खा जाए? वह खरगोश के शरीर को टोहकर और उसे दांत से काटकर देखती है। क्या इसे खाया भी जा सकता है?····

७

रीति के भइये की आज वर्षगांठ है। घर में तमाम औरतें जमा हैं। चहल-पहल मची हुई है। दादी ढोलक लिए बैठी हैं। एक स्त्री मंजीरे लिए हुए है। रीति की बूआ की एक सहेली हारमोनियम भी बजा रही है। बूआ पैर में घुंघरू बांधकर नाच रही है। जोर से गान उठाया जा रहा है।

रीति बड़ी तन्मयता से सुन रही है। दादी के ढोलक पीटते हाथ, मंजीरे पीटते हाथ, हारमोनियम पर दौड़ती अंगुलियां और बुआ के थिरकते पैर........

आज उमा अपने स्कूल से घुंघरू लाई है। सारे घर में छम्-छम्-छम्-छम् करती हुई घूम रही है।

रीति मचलती है घुंघरुओं के लिए। कितने अच्छे हैं घुंघरू और कितनी अच्छी है उनकी आवाज—छम्-छम्-छम्-छम् !

'हर चीज के लिए जिद करेगी' उमा उसे झिड़क देती है—'जो चीज देखी, वही लेगी !'

रीति रोती है, दादी से कहती है।

'दे दे घुंघरू रीति को।' दादी कहती हैं उमा से डांटकर।

'हम नहीं देंगे।' उमा खीझभरी आवाज में कहती है—'पराये

हैं घुंघरू—अभी तोड़कर रख देगी ।'

'ज़रा देर के लिए दे दे । अभी बहल जाएगी तो वापस ले लीजो ।' दादी कहती हैं—'शीशे के नहीं हैं, जो टूट जाएंगे ।'

'ले मरी !' उमा झुंझलाकर उसके सामने घुंघरू पटककर चली जाती है ।

धीरे से अपने आंसू पोंछकर वह घुंघरू उठा लेती है । थोड़ी देर तक आंखों के निकट लाकर देखने के बाद वह दादी से कहती है—'दादी ! हमारे पैरों में घुंघरू पहना दो ।'

दादी उसके दोनों पैरों में घुंघरू बांध देती हैं ।

रीति थिरकती है, ताल देकर नाचती है और लय उठाती है—

'ए गंगा मइया तोहे चुंदरी चढ़इ हौं
किसना से कर दे मिलनवा राम !'
'...'

आंगन में झूला डाला गया था तीज के दिन । बूआ की बहुत-सी सहेलियां दिनभर हो-हल्ला करती रहीं । दो-दो करके झूलती थीं और बाकी उन्हें पेंग देती थीं ।

अब झूला खाली होने पर रीति को उसपर बैठा दिया गया है । दोनों हाथों में मजबूती से रस्सी पकड़ा कर । रीति के होंठ हिल रहे हैं—

सिवसंकर चढ़े कैलास
बुंदियां पड़ने लगीं ।
....

रीति की आंखों में कई ऑपरेशन हो चुके हैं । उसकी बाईं आंख बिलकुल खराब हो चुकी है । दाहिनी में थोड़ा-थोड़ा फायदा हो

रहा है। उसीसे वह धुंधला-धुंधला कुछ देख भी पाती है। सभी बच्चों को यह बात मालूम है। वे रीति को घेरे बैठे हैं—

अशोक पूछता है—'रीति, तुम्हें किस आंख से दिखाई पड़ता है ?'

रीति अपनी दाहिनी आंख में उंगली गड़ाकर बताती है कि इससे !

फिर बारी-बारी से विमल, उषा, उमा सभी उससे पूछते हैं कि रीति ! तुम्हें किस आंख से दिखाई पड़ता है ?

और रीति उसी तरह से अपनी आंख में उंगली गड़ा-गड़ाकर बताती रहती है।

इसी वक्त पापा आ जाते हैं और सबको डांट-फटकार कर भगा देते हैं। फिर रीति को गोद में उठाकर प्यार करते हैं। उससे कहते हैं—'बेटा ! अपनी आंख में उंगली मत लगाया करो, नहीं तो चोट लग जाएगी, दर्द होगा !'

रीति गौर से सुनती है।

'अब तो नहीं लगाओगी उंगली आंख में ?' वह उसके हाथ में बिस्कुट देते हुए पूछते हैं।

'नहीं !' रीति बिस्कुट कुतर कर भरे मुंह से उत्तर देती है और जल्दी-जल्दी मुंह चलाने लगती है।

आज से काली जी का मेला शुरू हो गया है। रीति को मेले से तमाम खिलौने ला दिए गए हैं। रीति मेले जाकर ही मानी थी, हालांकि वह कई बार यह घोषणा सुन चुकी थी—

'जो बच्चे मेले नहीं जाएंगे, उनके लिए खिलौने और मिठाई आएगी और जो मेले जाएंगे, उन्हें कुछ भी नहीं मिलेगा !'

कई बार यह घोषणा दोहराए जाने पर भी सब बच्चे मेले गए थे और खिलौने-मिठाई लाए थे।

एक ओर शोर-सा मच रहा है। स्त्रियां कपड़े बदल रही हैं, बच्चे खा-खेल, रो-हंस रहे हैं।

रीति एक कोने में बैठी एक बड़ी परात में तमाम छोटे-छोटे बर्तन रखे है—

···यह चिमटा है, यह कलछी, यह तवा, यह पतीली, यह चूल्हा, यह थाली, यह चकला, यह बेलन, यह चलनी, यह सूप, यह·······

छोटे-छोटे नन्हें-नन्हें, प्यारे-प्यारे बर्तन···

तुरन्त रीति दादी बन जाती है। सारे बर्तन अपने सामने फैला लेती है। उंगली से अपने सामने एक लकीर गोलाई में खींच लेती है, ताकि कोई दादी का चौका छू न दे। फिर चूल्हे पर तावा चढ़ाकर रोटी बेलना शुरू कर देती है। दूसरे बच्चे उसे घेरकर बैठ जाते हैं।

'क्या लोगे ?' रीति दादी के समान गम्भीर वाणी में पूछती है।

'हम रोटी लेंगे !'

'हम दाल लेंगे !'

'हम तरकारी लेंगे !'

'हम··············'

बच्चे भूख के शोर कर रहे हैं। रीति खुशी से फूली नहीं समाती है। सबको पेट भरकर खिलाने की जिम्मेदारी है उसकी।

'लड़ो नहीं, सबको देंगे !' वह जल्दी-जल्दी हाथ चलाकर झूठ-मूठ के लिए खाना परोसने लगती है। सब बच्चों के हाथ झूठे ही ज़मान से लेकर मुंह तक दौड़ने लगते हैं—सब खाना शुरू कर देते हैं, एक दूसरे की तरफ देखते हुए, मुस्कराते हुए, चटकारियां भरते हुए।

रीति का भइया डाक्टर साहब बना है और रीति की जांच कर रहा है।

'रीति !' भइया अपनी उंगली उसकी आंखों के सामने नचाता हुआ उससे पूछता है—'बताओ यह क्या है ?'

'उंगली !' रीति उत्तर देती है।

'अच्छा,' वह अपनी हथेली नचाता हुआ पूछता है—'यह क्या है ?'

'हाथ !' रीति उत्तर देती है।

अब भइया हाथ में शीशा लेकर उसके सामने घुमाकर पूछता है—'यह ?'

'शीशा !'

'..........?'

'लकड़ी !'

'...........'

'गेंद !'

'..........?'

'गुड़िया !'

अन्त में भइये को खिलवाड़ सूझता है। वह उसके सामने कोई भी चीज नहीं रखता, स्वयं उसका मुंह ताकता रहता और शरारत से आंखें मटकाता हुआ पूछता है—'बताओ, यह क्या है ?'

रीति दोनों आंखों पर जोर देकर देखने की कोशिश करती है। उसे कुछ नहीं दिखाई देता।

'बताओ !' भइया फिर पूछता है।

रीति झुंझला जाती है। गुस्से में भरकर उत्तर देती है—'तेरा सिर !'

....भइये की खिलखिलाहट फूटती है।

इधर कई दिनों से रीति पायल के लिए मचल रही है। कुछ दिन पहले उसकी मासी पायल पहनकर आई थी और छम्-छम्

चली थी। रीति ने छूकर-टटोलकर इसकी पायल देखी थी और तभी से पायल के लिए ज़िद करने लगी थी। आज पापा उसके लिए पायल ले आए थे।

'बुआ, पायल पहना दो!' डिब्बे में से पायलें अपने आप से निकालकर खूब अच्छी तरह से उलट-पलट कर देखने के बाद वह बुआ से कहती है।

बुआ उसके हाथ से पायल लेकर उसके दोनों पैरों में पहना देती हैं। ज़रा देर के लिए रीति का कलेजा धड़कने लगता है। उसकी कितनी बड़ी साध पूरी हो रही है। धूप की तरह चम-चम करती हुई चांदी की पायल!

रीति हाथ हवा में हिलाती है और भावमग्न होकर नाचती है…

रीति को कितना दिखाई पड़ता है, इसकी परीक्षा सभी लोग तरह-तरह से करते हैं। उसका भइया इस समय डॉक्टर साहब बनकर उसकी जांच कर रहा है—

रीति की गुड़िया का छोटा-सा खटोला ज़मीन पर रखा हुआ है। रंग-बिरंगे सूत से उसकी बिनाई हुई है। भइया ज़मीन पर खटोले को चित लिटा देता है। फिर रीति से पूछता है—

'रीति! अब खटोला कैसे रखा हुआ है?'

रीति ध्यानपूर्वक खटोले को देखती है और फिर अपना हाथ सीधा फैलाकर बताती है, 'ऐसे रखा है!'

फिर भइया खटोले को उठाकर खड़ा कर देता है और तब रीति से पूछता है—'अब खटोला कैसा है?'

रीति हथेली टेढ़ी करके बताती है—'ऐसा है।'

भइया अब उसे झिकाने के लिए खटोला अपनी पीठ के पीछे छिपा लेता है और पूछता है—'अच्छा, अब कैसा है?'

रीति की दृष्टि शून्य में भटक कर रह जाती है। थोड़ी देर तक ताकने के बाद उसका धैर्य छूट जाता है।

'मर जाओ।' मरीज़ का उत्तर होता है और डॉक्टर साहब खिल्-खिल् हंस पड़ते हैं!

'रीति!' मम्मी सूचना देती हैं—'नाना की चिट्ठी आई है।'

'नाना!' रीति की कल्पना में नाना की आकृति घूम जाती है—बड़ी-सी तोंद, थल-थल, गंजा सिर, हल्की मूंछें, नाना! नाना की चिट्ठी आई है।

'नाना ने रीति को बुलाया है!' मम्मी फिर कहती हैं।

रीति अपने ही विचारों में है, नाना···

'नाना के पास चलोगी?' मम्मी पूछती हैं।

'हां!' रीति सिर हिला देती है—'चलेंगे।'

'वहां पर विभा है, सुरेश है, मामी हैं, नानी हैं····' मम्मी जैसे प्रलोभन दे रही हैं।

रीति ध्यान देती है—'विभा, सुरेश, मामी, नानी, और नाना—तमाम छोटी-बड़ी विविध आकृतियां उसकी कल्पना में नाचने लगती हैं।

'नाना रीति को प्यार करेंगे, नानी हप्पा देंगी, विभा रीति के साथ गुड़िया खेलेगी, सुरेश रीति को गुब्बारा देगा·······'

रीति कल्पना-चित्र खींच रही है—नाना रीति को गोद में उठा-कर प्यार कर रहे हैं, नानी चौके में बैठी हुई कटोरदान में से निकाल-कर रीति को गुझिया दे रही हैं। रीति के गुड्डे के साथ विभा की गुड़िया का ब्याह हो रहा है, सुरेश उड़ने वाला गुब्बारा रीति के लिए लाया है····

नाना के घर जाने की तैयारी की जा रही है—

एक छोटी-सी सन्दूकड़ी में रीति के कपड़े रखे गए हैं—गद्दियां, फ्रॉक, झबले, बनियाइनें, जांघिए····। बड़े सन्दूक में मम्मी ने अपने कपड़े रखे हैं। रीति के भइये के कपड़े एक दूसरी अटैची में हैं। एक चौड़े होल्डाल में सबके बिस्तर बांधे गए हैं········

बड़ी, ढक्कनदार कण्डिया में फल और मिठाइयां रखी गई हैं, पानी भरकर एक सुराही भी तैयार कर ली गई है। रीति और उसके भइये के लिए दूध गरम करके थर्मस में भर लिया गया है····

तांगा आ गया है। भगवती उसपर सामान रख चुका है। पापा कपड़े पहनकर नीचे आ गए हैं। मम्मी सबसे विदा ले रही हैं। रीति और उसके भइये को सभी लोग बारी-बारी से गोद में लेकर प्यार कर रहे हैं। दादी उसे गोद में उठाकर अपनी छाती से लगाने के बाद सुबकने लगती हैं।

दादी रो रही हैं—रीति को आश्चर्य होता है।

'जल्दी करो !' पापा की आवाज सुनाई पड़ती है। भगदड़ मच जाती है।

दादी जल्दी से पापा के तिलक कर रही हैं···

रीति तांगे में जुता हुआ घोड़ा देख रही है—यह इसका मुंह है, यह कान, यह पेट, यह पूंछ····

अभी यह घोड़ा बड़े जोर से दौड़ेगा—

रीति धीरे से उंगली बढ़ाती है और घोड़े को छूकर देखती है।

सब लोग तांगे पर बैठ जाते हैं और एक झटके के साथ वह चल पड़ता है।

घोड़ा रुक जाता है। स्टेशन आ गया है। शोर-गुल कानों में पड़ने लगा है। इधर से उधर लपकते हुए लोग, ऊपर ऊंचाइयों में गूंजती हुई उनकी आवाजें, ट्रेनों के चलने और इंजनों की सीटियों की आवाजें''''सब कुछ कौतूहलजनक''''

सब लोग प्लेटफार्म पर आ गए हैं—

रीति वातावरण को समझने की कोशिश कर रही है—इस सब कुछ में क्या-क्या कैसा है?

एक हड़बड़ाहट भरी गूंज दौड़ उठती है, सब लोग उठकर खड़े हो जाते हैं, कुली सन्दूकों और बिस्तरों को सम्हाल लेते हैं, रीति भी मम्मी की गोद में मजबूत हो जाती है'''

पहाड़ की तरह भारी गड़गड़ाहट के साथ रेलगाड़ी आती है, लगता है प्लेटफार्म झूले की तरह से हिल रहा है। धीरे-धीरे गाड़ी रुकती है। टिड्डी-दल की तरह उसमें से यात्री निकल पड़ते हैं और असंख्य स्त्री-पुरुषों की भीड़ उसमें समा जाती है।

डिब्बे के अन्दर सीट पर एक साफ गद्दी बिछाकर रीति को बैठा दिया जाता है। वह डर के मारे बैठना नहीं चाहती, रोने लगती है। फिर उसे खिड़की की सलाख के सहारे खड़ा कर दिया जाता है। वह खड़ी रहती है और कौतूहल से बाहर-भीतर की आवाजों को ध्यान से सुनती है, परछाइयों की तरह भागते हुए लोगों को देखती है।

काफी देर बाद धीरे-धीरे गाड़ी खिसकती है और तेज होती जाती है, तेज और तेज। मिठाई-फल खाकर दूध पीने के बाद रीति पहियों की खट्-खटा-खट् की आवाज सुनती हुई सोने लगती है, नींद उसकी आंखों में थिरकने लगती है'''

८

तार देकर रीति को नाना के यहां से बुलवाया गया है। उसके मुंडन संस्कार की तिथि इसी सप्ताह में निकली है। रीति के लिए यह समय अत्यधिक व्यस्तता और मानसिक उथल-पुथल का है—

'रीति का मुंडन होगा—'

उसके होंठों पर हास्य थिरकता है।

'रीति के बाल कटेंगे—'

वह अपने लम्बे-लम्बे सुनहरे बालों को टटोलती है।

'रीति खूब गहने पहनेगी—'

वह अपना गला टटोलती है—यहां वह माला पहनेगी, यहां…

'रीति नये-नये कपड़े पहनेगी—'

वह अपनी फ्रॉक का रंग देखने लगती है।

'रीति को खूब सारे रुपये मिलेंगे—'

वह कल्पना करती है कि इसके पल्ले में खूब सारे रुपये हैं और वह उन्हें उछाल-उछालकर बजा रही है।

'रीति को खूब सारी मिठाइयां मिलेंगी—'

और उसकी जीभ मिठाइयों के स्वाद की कल्पना करने लगती है—लड्डू, इमरती, गुलाब जामुन, रसगुल्ला, चमचम…

रीति के मुंडन की तैयारियां सवेरे से ही हो रही हैं। रसोईघर में रेल-पेल मची हुई है। दालान में बड़ी-सी भट्ठी बनाई गई है और उसपर एक बड़ा कढ़ाव चढ़ा दिया गया है। एक मन नुकती बनाने की तैयारी है।

रीति सवेरे से ही भावमग्न है। हर्ष-विषाद मिश्रित भावनाएं उसके फीके मुंह पर आ-जा रही हैं।

सबसे पहले ननी कढ़ाई का आयोजन है। लाल रंग का एक चोंगानुमा कपड़ा रीति के पहनने के लिए आया है। वह उसे उलट-पलटकर उसके आकार को समझने की चेष्टा कर रही है, लेकिन उसमें कहीं कोई सिलाई नहीं मालूम होती। वह इधर से हाथ डालती है, उधर निकल आता है, उधर से हाथ डालती है, इधर निकल आता है। कैसा अजीब है यह कपड़ा ?

उसे वह कपड़ा फटा हुआ-सा एक बड़ा रूमाल लगता है।

ननी कढ़ाई शुरू हो गई है। नाऊ एक छोटी कढ़ाई और कलछी लिए बैठा है। मुन्नी-मुन्नी पपड़ियां चकले पर बेल ली गई हैं और छनन्-छनन् पक रही हैं।

एक पटरे पर लाल कपड़ा बिछाकर रीति को उसपर बैठाया गया है। एक वैसे ही पटरे पर लाल कपड़ा बिछाकर रीति के पीछे उसकी दादी बैठी हैं। एक बड़ी कटोरी में कड़वा तेल रखा गया है और घास के दो छोटे गट्ठों से तमाम औरतें आकर तेल चढ़ा रही हैं।

हर औरत आकर उस कटोरी में छन्न से एक पैसा, अधन्ना या इकन्नी डालती है, फिर अपने दोनों हाथों में उन गट्ठों को उठाकर तेल में छुआती हैं। फिर रीति के पैरों, घुटनों, हाथों और माथे में छुआकर उन्हें फिर वहीं रख देती है।

इसी समय उस स्त्री के पति के नाम पर नाऊ द्वारा बेल बोली जाती है—

'बाबू राम परसाद जी ऽ ऽ ऽ की बेल !'

दूसरी स्त्री वही क्रिया दोहराती है—

'बाबू जयनारायण जी ऽ ऽ ऽ की बेल !'

'.......'

'बाबू हरसहाय जी ऽ ऽ ऽ की बेल !'

'.......'

'बाबू हरीकिसन जी ऽ ऽ ऽ की बेल !'

रीति तेल में नहा उठती है।

'अच्छा और कोई हो, तो जल्दी चलो, नहीं बाद में फिर न कहना !' दादी पीछे से चिल्लाकर कहती हैं।

थोड़ी देर बाद एक साफ कपड़े से रीति के बदन का तेल पोंछ-कर दादी उसे गोद में उठा लेती हैं।

रीति पटरे पर बैठी है और तमाम लुगाइयां उसके बटना मल रही हैं—

'बटना मलिए—'

'करिए धरिए—'

'मैल छुटाइए—'

'........'

गीत गाने और बटना मलने का काम साथ-साथ चल रहा है। कोई औरत रीति के पैर में बटना मल रही है, कोई हाथ में, कोई मुंह में, कोई गले में····

दादी की गोद में रीति बैठी है, आटे की दो फैली हुई लोइयां लिए हुए एक दूसरी दादी सामने बैठी हैं।

'अब रीति के बाल कटेंगे और फिर इस रोटी में भरे जाएंगे।' दादी सूचना देती हैं।

रीति सामने निगाह फेंकती है और दादी के दोनों हाथों में फैली हुई लोइयों को देखती है।

'हाय-हाय !' दादी कसकसाती हैं—'कैसे लम्बे-लम्बे सुनहरे बाल हैं—मेमों के बच्चों की तरह !'

रीति अपनी लम्बी लटों को छूती है।

'अच्छा साहब,' नाऊ अपना उस्तरा तेज़ करता हुआ पास आकर बैठ जाता है—'तैयार हो जाइए !'

उस्तरा रीति के सिर पर चलने लगता है। रीति ज़ोर-ज़ोर से रोना शुरू कर देती है। सिर के जिस-जिस हिस्से के बाल कटते जाते हैं, उसको छू-छूकर वह और भी जोर से रोने लगती है।

'बस अब ज़रा देर और है।' दादी बार-बार उसे सान्त्वना देती हैं। रीति पछाड़ें खाती रहती है।

'लीजिए, बस, अब चुप हो जाइए !' नाऊ उस्तरा बन्द करता हुआ कहता है।

रोती हुई रीति अपने सारे खुरदरे सिर पर हाथ फेरती है और हिचकियां लेने लगती है।...

नहलाने-धुलाने के बाद रीति को अंगरखा पहनाकर फिर से पटरे पर बैठाया गया है। उसके सिर में तंजेब का साफा बांधा गया है। दादी उसके पीछे बैठी हुई न्यौछावर कर रही हैं।

रीति के गले से लाल दुपट्टा लटकता हुआ उसकी गोद में पड़ा

है। दादी उसके दोनों छोरों को अपने हाथों में सम्हाले हुए हैं। बीसियों औरतें नारियल, सुपारी और रुपये ला-लाकर उसके पल्ले में डाल रही हैं।

'रीति को देखो तो कितने सारे रुपये मिल रहे हैं।' दादी रीति को गुदगुदाती हैं।

रीति का मन खुशी से उछलता है। हाथ में पकड़ा हुआ मिठाई का ठौर वह जल्दी-जल्दी खाने लगती है....

दो वर्ष की आयु से ही रीति तरह-तरह के गहनों को पहनने के लिए जिद करने लगी थी। उसके गले में कभी सोने की जंजीर और कभी लौकिट पहना दिया जाता है। घंटों वह उसकी बनावट देखती रहती है। उनके मोती टटोलती है और उन्हें अपनी दाहिनी आंख के निकट लाकर उनकी चमक देखने की कोशिश करती है, उसके रंग को पहचानना चाहती है।

कभी-कभी उसके कानों में चुटपुटी वाले टॉप्स पहना दिए जाते हैं। वह बहुत आहिस्ता आहिस्ता उन्हें सहलाकर देखती है। जान-बूझकर वह उन्हें जोर से घसीटती है और चिट् का आवाज के साथ वह उसके कानों से अलग होकर गिर जाते हैं। वह जिद करने लगती है, कान छिदवाने की और नाक छिदवाने की।

'जब तुम्हारा मुंडन हो जाएगा, तब तुम्हारे कान छिदेंगे, अभी-नहीं।' बार-बार उससे कहा गया था।

अब उसका मुंडन हो गया है और कान छिदेंगे।

आज रीति के कान छिदने वाले हैं। पिछले सप्ताह से ही वह रोज आज के लिए पूछती रही है और आज की प्रतीक्षा करती रही है।

'आज मेरे कान छिदेंगे ?' सवेरे आंख खुलते ही वह पूछती है।

'हां ।' उसे विश्वास दिलाया जाता है ।

एक भयपूर्ण सन्तोष के साथ वह धीरे-धीरे अपने कानों के निचले कोमल भाग को छूने लगती है । उनकी कोमलता और सुई की चुभन को तोलने लगती है । इनमें सुई भोंकी जाएगी । दर्द होगा, लेकिन जब छेद हो जाएगा, तब वह अपने कानों में बाली पहनेगी । बुन्दे पहनेगी, टॉप्स पहनेगी····

घर में होने वाली हर बात पर वह कान लगाए है, हर तरफ से सजग है—

खास तौर से हिदायत देकर एक पतली, महीन नोक वाली सुई मंगाई गई है, एक दोने में बूंदी के दो लड्डू मंगवाए गए हैं ।

'आओ रीति !' उसकी दादी आज असाधारण रूप से स्नेह प्रकट करती हुई उसे गोद में ले लेती हैं ।

रीति का कलेजा कांप उठता है । इस प्रकार का स्नेह-प्रदर्शन तभी होता है, जब उसे कोई बड़ी यातना मिलने वाली होती है ।

उसे धीरे से एक पटरे पर बैठा दिया जाता है ।

'अभी हम रीति को बूंदी का एक लड्डू देंगे—' उसकी दादी सुई में डोरा पिराती हुई सारी प्रक्रिया बताती हैं—'फिर इस सुई से इसके एक कान में छेद करके डोरा बांध देंगे ।····तब रीति को दूसरा लड्डू दिया जाएगा । यह उसे खाएगी और फिर इसका दूसरा कान भी छेद देंगे ।···जल्दी-जल्दी रीति के कान ठीक हो जाएंगे, और तब इसके लिए सोने की बालियां मंगवा दी जाएंगी ।'

रीति को एक लड्डू दे दिया जाता है । दांत से कुतरकर वह उसका स्वाद लेने लगती है । उसकी दादी धीरे से उसका कान थाम-कर सुई घोंप देती हैं । रीति की चीख घर भर में गूंज जाती है । किसी प्रकार जल्दी से उसके दूसरे हाथ में दूसरा लड्डू पकड़ाकर

उसके दूसरे कान में भी छेद कर दिया जाता है और डोरे में गांठ लगा दी जाती है। दादी नमक की एक कंकड़ी अपने दांतों से चबाकर उसके कानों में उंगली से मल देती हैं।

असह्य पीड़ा से रीति बिलखने लगती है।

रीति अब हर समय अपने कान टोहा करती है। धागे की छल्ला-नुमा गांठ उसके कानों में पड़ी है। अपनी पतली छोटी उंगली की नोक वह धीरे से कान में घुमाती है—दर्द तो नहीं हो रहा है। फिर धीरे से धागे को पकड़कर छूती है। पीड़ा की एक लहर दौड़ती है और वह जल्दी से हाथ खींच लेती है।

'जब रीति के कानों में धागा फिरने लगेगा, तब इसके कानों में बालियां मंगवा कर पहना दी जाएंगी।' दादी बार-बार कहती हैं।

रीति का हृदय पुलकता है, कल्पना नर्तन करती है—

नई, बढ़िया फ्रॉक पहने हुए रीति बैठी है, बालों में रंगीन नायलॉन का रिबन पड़ा हुआ है, आंखों में काजल डाला गया है, गालों पर पाउडर लगाया गया है, होंठों पर लाली, गले में मोतियों की माला, हाथों में कांच की चूड़ियां, उंगली में अंगूठी, नाखूनों में लाली, हथेलियों पर मेंहदी, पैरों में पायल और आलता...लेकिन इस सबसे बढ़कर कानों में नये-नये बुन्दे, सोने के—जगमग-जगमग करते........

कई दिनों से रीति के कानों में पीड़ा हो रही है। दोनों कानों में खून और मवाद की पपड़ी जमी है। जरा भी धागा हिल जाता है, तो वह रोते-रोते बेदम हो जाती है।

'न जाने क्या बात है'—दादी कहती हैं—'कि इतने बच्चों के कान मैंने छेदे और सबके कान बिना पके ठीक हो गए, लेकिन इसके

कान पक गए हैं।'

'चना निकला है, चना!' पड़ोसिन बुढ़िया कहती है—'मालूम होता है, इसने चना खा लिया है।'

मम्मी रोज दिन में दो बार गरम पानी में दवा डालकर उसके कान धोती हैं और फिर पाउडर छिड़कती हैं···

पीड़ा से सिसकती रीति सोचती है—जल्दी ही उसके कानों में धागे फिरने लगेंगे और फिर वह कानों में बाली पहनेगी, सोने की····

उसकी पीड़ा कम होने लगती है—उसके कानों में सोने की बालियां जगमगाने लगती हैं···

मम्मी एक कटोरी में गरम पानी लेकर बैठी हैं। उसमें रूई का छोटा-सा टुकड़ा पड़ा है। रीति के कान धोए जा रहे हैं।

'अब तो धागा फिरने लगा है।' मम्मी धागे को धीरे-धीरे खींचती हुई कहती हैं।

मम्मी के धागा छूते ही रीति सहमकर रोती है, कान में पीड़ा होने की आशंका से। लेकिन मां ज़बरदस्ती धागा पकड़कर घुमा देती हैं। ज़रा-सा दर्द होता है और बस, ठीक!

'देखो!' मम्मी कहती हैं—'अब तो धागा फिरने लगा है।'

रीति धागा छूती है।

'अब रीति के कानों के लिए बालियां मंगवाई जाएंगी। रीति दोनों कानों में बालियां पहनेगी।'

रीति को सहसा विश्वास नहीं होता, इसपर। महीने भर से बराबर होती पीड़ा ने उसका धैर्य छुड़ा दिया है। मम्मी की बात

की पुष्टि के लिए वह बहुत धीरे से कान का धागा छूती है—दर्द नहीं होता। वह धीरे से उसे खींचकर देखती है—सचमुच अब दर्द नहीं होता।

उसके कुम्हलाए होंठों पर एक फीकी मुस्कान थिरकती है····

रीति के भइये को मम्मी डांट रही हैं—

'क्यों छुआ तूने रीति का कान ?'

एक तमाचा मम्मी भइये के गाल पर मारती हैं और वह रोने लगता है।

'इतने दिन पकने के बाद बेचारी का कान ठीक हो रहा था और धागा तोड़कर रख दिया, अब तूने।'

लप्पा-झप्पी में भइये ने उसके कान पर हाथ मारा था, जिससे धागा टूट गया था और मर्मान्तिक पीड़ा से रीति चीखकर रो पड़ी थी।

'अब छुएगा उसका कान ?' दूसरा तमाचा मारते हुए मम्मी पूछती हैं।

अब भइये का रोना तेज़ हो जाता है और रीति का रोना बन्द हो जाता है। वह धीरे से अपना कान टोहती है—बिना धागे का कान, बीच में छेद है, इसीमें बाली पहनेगी···

पापा कुरसी पर बैठे अखबार पढ़ रहे हैं। रीति चुपचाप जाकर उनके पास खड़ी हो जाती है—

पापा अखबार उठाकर किनारे रख देते हैं और रीति को उठाकर गोद में बैठा लेते हैं। रीति के चेहरे की उदास मुद्रा में कोई अन्तर नहीं आता।

पापा धीरे से उसके पैरों के पास से उंगली की चिरैया चलाते

हुए उसकी गरदन तक लाकर गुदगुदा देते हैं—वह गूढ़ हंसी हंसती है। उसे विश्वास हो जाता है कि पापा इस वक्त खुश हैं।

'पापा !' वह भरी हुई आवाज़ में कहती है—'आज भइये ने मेरा कान नोच लिया और धागा तोड़ दिया।'

'अरे !' पापा का प्यार उमड़ता है। वह उसका कान सहलाते हुए छूकर कहते हैं—'अच्छा, हम भइये को मारेंगे।'

'पापा !' वह पापा को समझाती है—'अब हमारे कान ठीक हो गए हैं। अब हमारे लिए बाली ला दो।'

'अच्छा बेटे !' पापा कहते हैं—'आज हम तुम्हारे लिए बाली ज़रूर ला देंगे।'

'हां, आज इसके लिए बालियां ला दीजिएगा', बगल के कमरे से मम्मी सिफारिश करती हैं—'भइये ने इसके कान का धागा तोड़ दिया है। बाली नहीं पड़ेगी तो छेद बंद हो जाएगा।'

'नहीं, हम आज ज़रूर ला देंगे बेटे के लिए बाली !' पापा उसे पुचकारते हुए कहते हैं।

रीति आश्वस्त हो जाती है। पापा की बात पर उसे विश्वास है।

खट्-खट् की ज़रा भी आवाज़ होते ही रीति सजग हो जाती है—पापा तो नहीं आए ? उनके जूते की आवाज़ मालूम होती है। आज पापा उसके लिए बाली ज़रूर लाएंगे।

रीति के आसपास खिलौनों का ढेर लगा हुआ है—यह कुत्ता, यह भालू, यह कालू, यह गुड़िया, यह गुड्डा, यह···। रीति को लगता है कि इन सबके कानों में बालियां जगमग-जगमग कर रही हैं !

उबासी लेकर रीति धीरे से ज़मीन पर लुढ़क जाती है। आलस्य और थकान से उसकी आंखें झपकने लगती हैं।

स्वप्न-संसार में रीति बालियां कानों में पहने हुए उन्हें बार-बार टोह रही है—गोल-गोल, चमकीली कोनों की बालियां, पतली-पतली''''

पापा ने दो छोटी-छोटी बालियां लाकर आज रीति के हाथ पर रख दी हैं। वह बार-बार उन्हें उलट-पलटकर देख रही है—आंख के पास लाकर।

अभी मम्मी आएंगी और उसके कानों में दोनों बालियों को पहना देंगी, फिर वह शीशे में अपना मुंह देखेगी।

'ला देखें कैसी बालियां हैं,' मम्मी उसके हाथ से बालियां लेकर देखती हैं फिर उसे अपने निकट खींचकर कहती हैं — 'आ पहनाएं।'

धड़कते हुए हृदय से वह मम्मी के पास खिसक आती है। सुख की कितनी बड़ी निधि आज उसे मिलने वाली है।

बाली की महीन नोक मम्मी उसके कान में पहनाती हैं—एक हल्की सिसकी वह भरती है—

'बस, अब दर्द नहीं होगा।' मम्मी बाली के सिरे को दूसरी तरफ फंसाकर बन्द करती हैं।

अब दूसरे कान में! वह पहले कान को टोहती है। महीन-महीन बाला कान में लहरा रहा है। अभी मम्मी शीशा दिखाएगी।

हल्का-सा दर्द एक बार फिर होता है और बाली दूसरे कान में भी अट जाती है।

'ले शीशा देख!'

'लाओ!' हुलसकर वह दोनों हाथों में शीशा थाम लेती है और उसे अपने मुंह के पास लाकर देखती है। मुस्कराहट की कान्ति उसके मुंह पर छिटकती है''''''

१

आज पहला मंगल है। अब चार मंगल तक लगातार महावीर जी के मन्दिर के निकट मेला होगा।

सब बच्चे सवेरे से ही उछल-कूद मचा रहे हैं। भइये को मम्मी तैयार करा रही हैं। इसके बाद रीति की बारी आएगी—रीति सोच रही है।

'सीधे-से चोटी करवा लो'—माँ भइये को सावधान करती है—'नहीं तो तुम्हें यहीं छोड़ जाएंगे।'

रीति भइये के नये नेकर और नई बुशर्ट की तरफ देखती है।

'मम्मी !' भइया पूछता है—'क्या रीति को भी ले जा ओगी ?'

'नहीं ! रीति नहीं जाएगी !' मम्मी मना करती हैं—'रीति पापा के साथ जाएगी।'

रीति चौंकती है। क्या मम्मी उसे सचमुच नहीं ले जाएंगी ! और पापा? पापा तो कभी मेले, जाते नहीं। उसका चेहरा कुम्हला जाता है। वह पापा के पलंग के पास पहुंचती है। टोहकर देखती है—पापा अभी तक सो रहे हैं। उन्हें हिलाकर वह कहती है—'पापा !'

पापा नहीं सुनते। वह पापा के सिर को हिलाती है—'पापा !'

पापा उसे नींद में ही झिड़क देते हैं और करवट बदल लेते हैं। परन्तु दूसरे ही पल उसे उठाकर अपने पास बैठा लेते हैं। चुपाकर

पूछते हैं—'क्या है, रीति !'

रीति की वेदना उमड़ने लगती है। वह सिसककर कहती है—'पापा, हमें मम्मी मेले नहीं ले जा रही हैं, भइये को ले जा रही है !'

'अच्छा, हम तुम्हें अपने साथ ले जाएंगे।' पापा उसे सान्त्वना देते हैं।

'नहीं, हम मम्मी के साथ जाएंगी।' वह मचलती है, क्योंकि उसे पता है कि पापा मेले जाएंगे ही नहीं।

'इसे भी ले जाओ मेले अपने साथ।'—पापा मम्मी से कहते हैं। रीति फुरती से उठकर कपड़ों के ढेर में से एक रेशमी फ्राक ढूंढ़कर पापा को पकड़ा देती है। वह उसे पहना देते हैं।

सब लोग कपड़े पहनकर तैयार हो गए हैं। हर एक को जल्दी से जल्दी दरवाजे से बाहर निकल पड़ने का इन्तजार है। लेकिन अभी तक ताई कपड़े नहीं पहन चुकी हैं। इसीलिए सब लोग रुके हुए हैं। रीति कभी-कभी अपनी नई फ्रॉक का पल्ला अपनी आंख के पास लाकर उसके रंग को पहचानने की कोशिश करती है। फिर आह्लाद से उछलने लगती है।

ताई कपड़े पहनकर आ जाती हैं। सब लोगों में चल पड़ने की सरसरी फैल जाती है।

'जो कोई भी गोदी में चलने को कहेगा, उसे नहीं ले जाया जाएगा !' ताई अपनी साड़ी का पल्ला सम्हालती हुई ऊंची आवाज में घोषणा करती हैं।

जो बच्चे अभी तक गोद में चलने के लिए मचलते थे, इस घोषणा को सुनकर अपना इरादा बदल देते हैं।

'हम लोग पइपों-पइपों जाएंगे।' सब बच्चे चिल्लाकर कहते हैं।

रीति भी उनकी आवाज़ में आवाज़ मिलाती है। फिर झुककर अपने सफेद धुले हुए मौजे और लाल छींट की सैंडिल को देखती है।

'चलो।'

एक कोहराम-सा मचता है और सब लोग चल पड़ते हैं। रीति बुआ की उंगली पकड़कर दरवाज़े की सीढ़ियां पार करती है और गली में नालियों से बचती हुई चलती रहती है—

रीति मेले जा रही है!

सब लोग गली से निकलकर मन्दिर वाली चौड़ी सड़क पर आ गए हैं। एक दूसरे के बीच का फासला भीड़ की वजह से कम होता जा रहा है और सब लोग सटकर चलने लगे हैं।

चकरघिन्नियों का शोर सुनाई पड़ने लगा है, तमाम फेरी वालों की आवाज़ें, फुटकर दुकानदारों की आवाज़ें, ज़मीन पर लेट-लेटकर रास्ता तय करने वालों का आवाज़ें, सब मिल-जुलकर वातावरण की हलचल को बढ़ा रही हैं।

पपीरी और बांसुरी की आवाज़ें गूंज रही हैं·······

'बुआ!' थोड़ी दूर और चलने के बाद रीति कहती है—'हमें अपनी गोदी में ले लो। अब हम थक गए हैं।'

'खबरदार!' बुआ के कुछ बोलने से पहले ही मम्मी की गर्जना सुनाई पड़ती है—'अगर गोदी में लेने को कहा, तो अभी घर वापस भेज देंगे।'

सहमकर रीति बुआ की उंगली अपनी छोटी मुट्ठी में कस लेती है।

'थोड़ी दूर और चलो पैरों-पैरों फिर तुम्हें गोदी में लेंगे। बुआ उससे कहती हैं।

रीति पैर घसीटती आगे बढ़ती रहती है.......

भीड़ में दबती-दबाती बुआ रीति को गोद में दबाए हुए मन्दिर के भीतर इकट्ठी भीड़ में सबसे आगे पहुंच गई है। पीछे से बराबर धक्के आ रहे हैं। बुआ ने प्रसाद का दोना पुजारी के हाथों में दे दिया है। पुजारी दोने में से आधी मिठाई निकालकर दोना बुआ को वापस कर रहा है। महावीर जी की लाल बड़ी मूर्ति को रीति ध्यान से देख रही है, मूर्ति की आकृति को समझने की कोशिश कर रही है।

बुआ धक्का-मुक्का करती हुई वापस लौटने लगती हैं। भीड़ से पीछे आकर वह एक बार उछलकर टन् से घंटा बजा देती हैं। फिर रीति को भी दोनों हाथों में पकड़कर ऊंचा करती हुई कहती हैं—

'तुम भी बजाओ !'

रीति टटोलकर घंटा बजा देती है—'टन्-न्-न्-न्-न्' की आवाज होती है।

रीति के होंठों पर हंसी फूटती है....

एक आइसक्रीम रीति खा चुकी है और अभी तक उसकी सूखी सींक को चूस रही है। जीभ पर उसकी मिठास का अनुभव कर रही है।

'चने, चने !' अशोक चने की लम्बी पुड़िया फड़फड़ाता हुआ सबको दिखाता है और जीभ चटकारता हुआ कहता है—'बड़ी मिरचें हैं।'

'चने !' रीति की जीभ चटकती है, खूब मिरचें होंगी।

'हम भी चने लेंगे।' रीति मचलती है और एक पुड़िया लेकर ही मानती है। धीरे से पुड़िया का मुंह खोलकर वह थोड़े-से चने

निकालकर अपने मुंह में रख लेती है। उसका मुंह साफ होने लगता है और वह जल्दी-जल्दी दांत चलाकर सिसकारी लेती हुई खाने लगती है···

'वह देखो, वह देखो,' विमल अपने उड़ने वाले गुब्बारे का धागा पकड़े हुए सबको दिखा रहा है—'वह देखो, मेरा गुब्बारा बादल में जा रहा है।'

सब बच्चे मन्त्रमुग्ध होकर उसके कमाल को देखते हैं। वाकई में उसका गुब्बारा ऊपर आसमान की तरफ बढ़ रहा था। अगर वह उस धागे को अपने हाथ से छोड़ दे, जिसमें वह बंधा था, तो वह सचमुच ही बादल में चला जाता।

'हम भी गुब्बारा लेंगे!' रीति गुब्बारा भी अब लेना चाहती है।

कुछ टाल-मटोल के बाद अन्त में उसके हाथ में भी एक धागा पकड़ा दिया जाता है। वह अपनी पतली उंगलियों से उसे थामे रहती है, फिर अपने सन्तोष के लिए उसे खींचकर नीचे लाती है, मुंह के पास लाकर देखती है—लाल उड़ने वाला गुब्बारा, धागा धीरे-धीरे वह छोड़ती जाती है—गुब्बारा बादल की ओर बढ़ने लगता है—

रीति पुलकती है, हुलसती है और फिर मजबूती से धागे को पकड़कर कूदने लगती है—'ओ हो, ओ हो, मेरा उड़ने वाला गुब्बारा!'

'यह देखो रीति!' रीति का भइया जैसे उसके उड़ने वाले गुब्बारे को चुनौती देते हुए कहता है—'यह देखो पिस्तौल!'

'पिस्तौल?' रीति घूरकर उसके आगे बढ़े हुए हाथ में पकड़ी हुई चीज़ को देखने की कोशिश करती है—काला-काला-सा कुछ है।

'देखा?' भइया खिलकट्टा मारकर पूछती है। वास्तव में उसने

रीति को चकित कर दिया है।

'यह क्या है ?' रीति कौतूहल से पूछती है।

'यह पिस्तौल है,' भइया उसे समझाता है—'इससे पटाखा छुटाया जाता है।'

'छुटाओ !'

'देखो !' वह उसे सावधान करता है—'अलग हट जाओ, नहीं तो लग जाएगी।'

रीति हिचकिचाकर अलग हट जाती है।

'पटाख् !' की आवाज़ होती है।

रीति को स्तब्ध होते देख भइया फिर ज़ोर से हंसता है।

'तुम अपनी पिस्तौल हमको दे दो और हमसे गुब्बारा ले लो !' रीति उससे कहती है।

भइया एक बार गुब्बारे पर और दूसरी बार अपनी पिस्तौल पर निगाह डालता है और फिर 'हट्' कहता हुआ भाग जाता है।

रीति अपने गुब्बारे को धीरे-धीरे नीचे उतारकर उसे फिर तौलती है और फिर सन्तोषभरे हाथों से धागा ढीला करने लगती है—

गुब्बारा ऊपर बादल में चढ़ने लगता है····

तमाम खाने-पीने की चीजों के अलावा सभी बच्चे कोई न कोई खिलौना भी ले चुके हैं।

'अच्छा, अब किसीके लिए कोई चीज़ नहीं ली जाएगी !' ताई ऊंची आवाज़ में घोषणा करती हैं, 'अब सब लोग सीधे घर चलो चुपचाप, अगर रास्ते में किसीने कुछ लेने को कहा, तो खूब पिटाई होगी।'

सब बच्चे इस घोषणा को सुनते हैं और किसी न किसीकी

उंगली पकड़कर चल पड़ते हैं—कोई असन्तुष्ट और कोई सन्तुष्ट होकर।

रीति भी थकी हुई-सी अपने पैरों को घसीटती बढ़ रही है। उसने गुब्बारे के धागे को थोड़ा-सा खींचकर अपनी हथेली पर लपेट लिया है, बीच-बीच में वह पीछे मुड़कर देखती जाती है—उसका गुब्बारा भी उसके साथ आ रहा है न ?

सारा घर तेज़ रोशनी से जगमगा रहा है। खूब चहल-पहल मची हुई है। बच्चों, औरतों और मरदों की मिली-जुली आवाज़ें भारी शोर पैदा कर रही हैं। तिमंज़िले की छत पर लाउड स्पीकर तीसरे पहर से ही बज रहा है और मुहल्ले भर में उसकी आवाज गूंज रही है।

रीति की बुआ आजकल किसीसे ज्यादा नहीं बोलती हैं। ज्यादातर अपने कमरे के भीतर ही बैठी रहती हैं। हां, रीति से जरूर कभी-कभी वह बातें करती हैं, प्यार करती हैं और उसे अपने पास लिटाकर थपकियां देती हुई गाने सुनाती हैं।

रीति को आजकल मिठाई खूब खाने को मिलती है···

'मम्मी ! बुआ का क्या होगा ?'

'ब्याह !'

'..............'

'जब बुआ का ब्याह होगा, तो खूब सारे बाजे बजेंगे, फूफा जी आएंगे ?'

'फूफा जी ?'

'हां, फूफा जी के साथ बुआ चली जाएंगी ?'

'बुआ चला जाएंगी ?'

'हां।'

रीति के चेहरे पर एक सूखी उदासी छा जाती है···

रीति बड़ी देर से भूख से रो रही है। बार-बार दूध मांग रही है। मगर कोई सुनता ही नहीं। मम्मी चौके में हैं। बार-बार 'आती हूं' कहकर रह जाती हैं। रीति रोती रहती है।

काफी देर बाद रीति के सामने दूध का गिलास रखती हुई मम्मी उसे समझाती हैं, 'देखो रीति ! रोया मत करो। चुपचाप सब चीज़ें देखो। घर में खूब सारी मिठाई बन रही है, खूब सारी······'

'काहे के लिए ?'

'बुआ के ब्याह के लिए !'

मम्मी चली जाती है। रीति अपना मुंह लटका लेती है।

घर में शोर-गुल बढ़ता जाता है। भगवती के अलावा तीन नौकर और आ गए हैं। दादी, मम्मी, ताई सभी अब दिन भर इधर से उधर दौड़ती रहती हैं। नौकर भागे-भागे फिरते हैं। रीति को अब कम पूछा जाता है। सिर्फ बुआ उसे अब लेती हैं।

बुआ रीति को अपने कमरे में ले गई हैं। अन्दर से कमरा बन्द करके उन्होंने उसे पलंग पर लिटा दिया है और स्वयं भी उसके पास लेट गई हैं, उससे तरह-तरह की बातें कर रही हैं—

'बुआ !' रीति कुछ न सुनकर भारी आवाज़ में कहती है।

'क्या है रीति ?' बुआ चौंककर उससे पूछती हैं।

'तुम फूफा जी के साथ चली जाओगी ?' रीति रुआंसी आवाज़ में पूछती है।

बुआ कुछ जवाब नहीं देतीं। रीति को ज़ोर से अपने कलेजे से चिपका लेती हैं।

आजकल या तो रीति बुआ के पास सोती है और या अकेली। क्योंकि मम्मी उसे सुलाने के लिए थोड़ी देर उसके पास लेट जाती हैं और जब वह सो जाती है, तो फिर वह नीचे चली जाती हैं, काम करने। ब्याह का घर है। अब तो अगर रीति कभी रोती भी है, तो कोई उसे गोदी में उठाकर पुचकारता-चुपाता नहीं, बल्कि उसके हाथ में चुपचाप मिठाई का एक ठौर पकड़ा देता है और रीति चुप हो जाती है। फिर वह उस वक्त तक चुप रहती है, जब तक उसके हाथ की मिठाई खत्म नहीं हो जाती।

बड़ी ज़ोर से रोने की आवाज़ सुनाई पड़ती है। रीति का कलेजा दहल उठता है। बीसियों औरतें इकट्ठी होकर रो रही हैं।

'रीति, जल्दी आ, बुआ जा रही हैं।' मम्मी रीति को ढूंढ़ती हुई आती हैं और झटके के साथ उसे गोद में उठाकर नीचे भाग जाती हैं।

तमाम औरतें ही औरतें चारों ओर जमा हैं। भीड़ के बीच से ज़ोर से रोने की हुमक उठ रही है।

मम्मी बुआ के पास जाकर रुक जाती हैं। लाल-लाल साड़ी में बुआ की हिचकियां नहीं समा रही हैं। सांस रोककर रीति बुआ को देखती है—सिसकते हुए बुआ रीति को छाती से चिपटाकर रोने लगती हैं।

रीति भी ज़ोर-ज़ोर से रोना शुरू कर देती है····

एक रुपया रीति की छोटी हथेली में रखकर बुआ दादी से लिपट जाती हैं।

····और बुआ चली जाती हैं।

१०

गली में बाजा बज रहा है—ढोलक, बांसुरी, झांझ और न जाने क्या-क्या।

'अनाथालय वाले आए हैं !'

'पापा !' रीति कहती है—'हमें भी बाजा दिखा दो।'

पापा उसे उंगली पकड़कर बाहर ले आते हैं। बाहर सभी बच्चे जमा हैं।

अनाथालय वाले कोई फिल्मी धुन बजा रहे हैं। बच्चे तालियां पीट रहे हैं, रीति भी ताली पीटती हुई किलकने लगती है।

कुछ देर के बाद एकाएक सारे बाजे बन्द हो जाते हैं। कोई अपने घर से आटा, कोई दाल, कोई चावल उनकी झोलियों में डालते हैं और कोई उनकी फैली हुई हथेलियों पर पैसा रखने लगते हैं।

पापा उमा को घर भेजकर एक चवन्नी मंगवाते हैं रीति की मम्मी से। उमा भागकर जाती है। मगर रीति की मम्मी उसे एक दुअन्नी ही देकर लौटा देती हैं। पापा रीति से वह दुअन्नी दिलवा देते हैं।

'चाचा जी !' उमा रीति के पापा से पूछती है—'क्या आदमी अन्धा है ?'

'हां !' पापा भारी आवाज़ में उत्तर देते हैं और रीति को छाती

से चिपकाकर घर के भीतर वापस लौट आते हैं।

रीति पापा के साथ बाजार जाती है और तमाम खिलौने-मिठाई-गुब्बारे लेकर लौटने लगती है। उमा भी साथ है। रीति गुब्बारों को धागे से सम्हाले है और उमा खिलौनों को लिए हुए है।

रास्ते में किसीके गाने की आवाज सुनाई पड़ती है—

'बाबू जी ! एक पैसा दे दो !'

रीति सुनती है और आंखें फाड़कर देखने की कोशिश करती है।

'अन्धे बच्चे को एक पैसा दे दो।'

रीति अपने सामने एक छोटी आकृति की कल्पना करती है और एक महीन आवाज़ सुनती है—

'अन्धे मुहताज को एक पैसा दे दो, बाबू जी !'

पापा जेब से कुछ निकालकर उसके हाथ पर रख देते हैं।

'चवन्नी !' उमा चौंककर कहती है—'आपने चवन्नी इसको दे दी ?'

पापा कुछ नहीं बोलते। रीति देखती है, उनको रूमाल निकालकर आंखें पोंछते।

'क्या यह बच्चा अन्धा था, चाचा जी ?' उमा पूछती है।

पापा कुछ नहीं बोलते। रीति को छाती से चिपका लेते हैं और आगे बढ़ने लगते हैं।

दादी सात-आठ दिन के बाद अस्पताल से आई हैं। उनके पैर की हड्डी रिक्शे से गिर पड़ने से टूट गई थी।

अस्पताल का नाम रीति को कंपा देता है।

कई आदमियों ने मिलकर दादी को पलंग पर लिटा दिया है।

'रीति !' दादी कराहते हुए कहती हैं—'देखो, हमारे पैर में चोट लग गई है।'

रीति के हृदय की सारी करुणा उमड़ आती है। वह दादी का सिर अपनी गोद में लेकर उन्हें पुचकारना चाहती है, उनके पैर का दर्द कम करने के लिए पैर में फूंक मारना चाहती है, लेकिन दादी का पैर छूते ही वह अपना हाथ एक झटके के साथ वापस खींच लेती है।

वह घूरती निगाहों से देखती है—दादी का पतला पैर खूब मोटा हो गया है, सफेद-सफेद पत्थर जैसी कोई चीज़ पट्टी की तरह उनके पैर पर लपेटी हुई है—चिकनी, कठोर, चमकीली······

वह मम्मी की गोद में सिकुड़ जाती है।

फिर रीति दादी के पास नहीं जाती डर के मारे, वह मिठाई देने को बुलाती हैं, तब भी नहीं।

पापा का सन्दूक तैयार किया जा रहा है, बिस्तर बांधा जा रहा है, वह रात की गाड़ी से दिल्ली जा रहे हैं।

'भगवती रिक्शा लेने गया?' पापा मम्मी से पूछते हैं।

'हां,' मम्मी उत्तर देती हैं।

पापा कपड़े पहनकर तैयार हो जाते हैं और टहलने लगते हैं।

रीति एक कोने में मुंह लटकाए बैठी है।

'रीति !' पापा उसे गोद में उठाकर पुचकारते हुए पूछते हैं, 'क्या बात है, बेटा !'

'पापा !' रीति रुआंसी होकर पोछती है—'तुम हमें छोड़ जाओगे?'

पापा ज़ोर से हंस पड़ते हैं और कहते हैं—'हम बड़ी दूर जा रहे

हैं। वहां से तुम्हारे लिए खूब सारे खिलौने लाएंगे···

रीति कल्पना में देखती है—पापा उसके लिए तमाम खिलौने लाए हैं, वह उनसे घिरी बैठी है···

आज रीति बहू बनी है।

'बहू, ओ बहू !' दादी पुकारती हैं।

रीति अपना घूंघट सम्हालती हुई सिकुड़ने लगती है। घर के सभी लोग उसे 'बहू' पुकार रहे हैं। जिस तरह से बूआ बहू बनी थीं, उसी तरह से रीति भी बनी है। उसने दो चोटियां की हैं, बिन्दी लगाई है, काजल लगाया है, पाउडर लगाया है, चूड़ियां पहनी हैं, माला पहनी है, पेटी पहनी है, लच्छे पहने हैं, बिछुए पहने हैं, लहंगा पहना है, दुपट्टा ओढ़ा है······

'ले बहू, ये खा ले !' दादी मिठाई का एक ठौर उसकी तरफ बढ़ा देती हैं।

घंटों से 'बहू' का अभिनय करती रीति मिठाई का लोभ नहीं छोड़ पाती और सारी लाज-सरम छोड़कर खाने लगती है······

जब पापा खाना खाते हैं, तो उनके सामने बैठना रीति को बहुत अच्छा लगता है। जल्दी-जल्दी पापा को हाथ-मुंह चलाते देख उसे हंसी आती है।

मम्मी लाख डांटती-मना करती हैं, कि खाना खाते समय पापा के पास मत जाओ, लेकिन रीति नहीं मानती। पापा के खाना खाते समय वह ज़रूर उनके पास जा बैठती है।

पापा मम्मी से तो हमेशा कहते हैं कि रीति को हटा लो, मगर खुद कभी नहीं उसे हटाते, बल्कि चुपके से उसके मुंह में ग्रास रख देते हैं—

'पापा के पास बैठकर खाना नहीं !' मम्मी की हिदायत उसे याद आ जाती है और वह मना करती है—'नहीं, हम नहीं खाएंगे।'

लेकिन तब तक उसकी जीभ को स्वाद का पता चल चुका होता है और वह मुंह चलाना शुरू कर देती है···

आठ दिन हो गए हैं, अभी भी रीति का बुखार नहीं उतरा है। रात के वक्त तो उसका बदन तवे की तरह तपने लगता है।

'पापा, हमें अपने पास लिटा लो।' रीति हांफती हुई बड़ी मुश्किल से कह पाती है।

'अच्छा बेटे !' पापा उसे उठाकर अपने पलंग पर लिटा लेते हैं और उसका बदन छूकर बुखार देखते हैं।

'इसको अलग सुला दो !' थोड़ी देर बाद पापा मम्मी से कहते हैं।

'नहीं,' रीति हांफकर कहती है—'हमें डर लगता है।'

'अच्छा, बेटे, तुम हमारे पास ही सो जाओ।' मम्मी रीति को अलग हटाना चाहती हैं, मगर पापा मना कर देते हैं।

रीति पापा के पास ही सो रहती है····

रीति ने पापा का बिस्तर खराब कर दिया है। पापा आधी रात को गुस्से में बड़बड़ा रहे हैं, रीति अनुभव करती है, सब कुछ, लेकिन तेज बुखार में उसकी आंखें और भी फीकी हो जाती हैं····।

वह जानती है कि पापा गुस्सा हो लेंगे मम्मी पर, लेकिन रीति को अपने पास से हटाएंगे नहीं···।

'अन्धी।'—चीखकर मम्मी कहती हैं और एक तमाचा रीति के गाल पर पड़ता है। उसका चेहरा तमतमा जाता है, सारे शरीर में कंपकंपी-सी होने लगती है। वह अनुमान कर रही हैं, मम्मी बहुत

क्रोध में हैं, खीझ-झुंझलाहट से तड़पती।

रीति की निस्तेज आंखें फैल जाती हैं....।

उससे दूध का भरा हुआ गिलास गिर पड़ा है, दूध शायद फर्श पर चारों तरफ फैल गया है, शायद उससे कुछ और चीजें भी खराब हो गई हैं, शायद....शायद...हां, शायद यह सब कुछ हुआ है...।

ठीक पता पाने के लिए वह हथेली से टटोलकर देखना चाहती है, मगर मम्मी के भय से ऐसा नहीं करती...उसके हाथ खराब हो जाएंगे, फिर वह अपने हाथ फ्रॉक से पोछेगी, फ्रॉक भी खराब हो जाएगी और फिर—

फिर मम्मी तमाचा मारेंगी और कहेंगी—'अन्धी !'

'अन्धी' का मतलब अब रीति समझने लगी है। उसे किसी भी गाली के सुनने से, कितनी भी डांट खाने से, कितना भी पिटने से उतनी वेदना नहीं होती, जितनी 'अन्धी' कहे जाने से।

पहले रीति यह नहीं जानती थी कि अन्धी का क्या अर्थ होता है। पहले उसके लिए 'मरी', 'कम्बख्त', 'अभागी', 'करमफूटी' और 'अन्धी' सब बराबर थे। पर अब वह समझ गई है कि 'अन्धी' इन सबसे क्यों अलग है....।

भूख से उसकी आंतें कुलबुला रही हैं, वह दूध मांग रही है—'दूध !'

हमेशा उसके दूध मांगने पर यही होता है—

कुछ बड़बड़ाती हुई मम्मी उठती हैं। दूध का गिलास रीति के सामने लाकर रखती हैं। फिर शायद शक्कर लेने जाती हैं, रीति उत्सुकता से अपनी सूजी आंखें गिलास पर जमा देती है—

....धुंधला-धुंधला-सा बर्तन।

रीति देखना चाहती है कि उसमें कितना दूध है, गिलास भरा

हुआ है या थोड़ा खाली है, वह उसके भीतर झांकने की कोशिश करती है, फिर उंगली से छू कर देखती है—

गरम दूध से वह झटके के साथ अपना हाथ खींच लेती है, गिलास लुढ़क जाता है। मम्मी आकर पीटती हैं और कहती हैं—'अन्धी!'

'पापा!' वह अपने सम्पूर्ण हृदय से पुकारना चाहती है—सहानुभूति के लिए, प्यार के लिए, सन्तोष के लिए, धैर्य के लिए, मगर नहीं पुकारती। कोई फल नहीं होगा—पापा दफ्तर गए हैं।

वह जोर से रोना चाहती है, मगर नहीं रोती—मम्मी और मारेंगी।

....रीति की आंखों में आंसू छलछला आते हैं, उसकी फीकी आंखें, गीले आंसुओं से भरकर और भी धुंधली हो जाती हैं....।

वह रोती नहीं, चीखती नहीं, सिर्फ गहरी सांसें लेती हैं—मगर उसकी पीड़ा कौन समझेगा—कौन ?

'ले!' मम्मी दूसरे गिलास में दूध भरकर लाती हैं। अपने आंचल से धीरे-धीरे उसके आंसू पोंछती है, उसे पुचकारती है, दुलारती है और दूध पिला देती है अपने हाथ से।

रीति सारा दर्द भूल जाती है, मम्मी का स्नेह पाने के बाद, मम्मी के स्नेहांचल के नीचे—

सचमुच मम्मी कितनी अच्छी हैं, कितनी प्यारी....!

दादी के कहने से रीति ने न जाने कितने बार अपने नन्हें-नन्हें हाथ जोड़कर भगवान् की मूर्ति के सामने पूछा है—'भगवान्! तुमने मेरी आंखें क्यों खराब कर दी हैं? भगवान्! तुम मेरी आंखें कब

ठीक करोगे ? भगवान्...।

रीति को हमेशा आश्चर्य हुआ था। भगवान् ने उसे कभी जवाब नहीं दिया....

अपनी असमर्थता का पूरा आभास अब रीति को हो रहा है....

एक बच्चा रीति को मारकर कहीं छिप जाता है, रीति टटोलती हुई इधर-उधर बढ़ती है, वह हंसता है, रीति को खिझाता है—

क्यों ?

क्योंकि वह जानता है कि रीति उसे ढूंढ़ नहीं सकती।

दूसरे बच्चे आपस में लड़ते-झगड़ते हैं, लेकिन वे एक दूसरे को देख सकते हैं, दौड़कर पकड़ सकते हैं...

कितनी हसरत होती है रीति को जब वह दूसरे बच्चों को बिजली की तरह से भाग-दौड़ करते देखती है।

उनकी नकल करने की इच्छा से कभी-कभी वह भी बेतहासा भागती है—मगर हमेशा गिरी है, कभी दीवार से टकरा गई है, कभी कुछ, कभी कुछ....सख्त चोटें खाती है—

उसका हृदय कभी-कभी विद्रोह करने लगता है और वह सीमाएं तोड़कर अपनी विवशता पर विजय पा लेना चाहती है, मगर कैसे हो सकता है यह ? हमेशा उतनी ही तेज़ चोट खाती है।

उसकी फीकी आंखों के सामने भी चित्र घूमते हैं उसकी व्यथा को बढ़ाते हुए—

रीति मिठाई हाथ में लिए खा रही है। छत पर सामने से बन्दर आकर उसके हाथ से मिठाई छीन लेता है। वह उसे कोई बच्चा समझ-

कर प्रतिरोध करती है। मगर जब वह गुर्राता है, तब चीख मारती है···

पापा ग्लूकोज़ के डिब्बे में से थोड़ा-सा एक कागज़ पर उलटकर रीति के सामने रख देते हैं और नहाने चले जाते हैं। रीति सारा ग्लूकोज़ चाटने के बाद अनुभव करती है कि छोटे-छोटे कई डेले इधर-उधर गिर गए हैं। और ग्लूकोज़ के धोखे में वह सफेद चूने का एक डेला खा जाती है। उसका मुंह खून से भर जाता है और वह फड़फड़ाने लगती है···

सब बच्चे अलग खेलते हैं, अपने आप। लेकिन जब रीति खेलती है, तो पापा उसके पीछे-पीछे दोनों हाथ फैलाए हुए चलते हैं—कहीं रीति गिर न पड़े और फिर भी रीति कितने बार गिरती है—सिर, घुटने, पंजे, हथेली छिल जाती हैं···

रीति को लगता है कि सारा संसार उसका उपहास कर रहा है, क्योंकि वह अन्धा नहीं है, क्योंकि उसने कभी एक वर्ष की आयु में आंख के ऑपरेशन की पीड़ा नहीं अनुभव की, क्योंकि उसके कभी बचपन में सैकड़ों सुइयां नहीं लगीं···

छोटे बच्चे, आदमी, औरतें—यहां तक कि खिलौने भी हंसते हैं—खिलखिला-खिलखिलाकर हंसते हैं—रीति के अन्धेपन पर!

और उनकी हंसी बेधती है, रीति के हृदय को कोंचती है, उसकी वेदना को···

महीनों रीति की आंखों में काली महारानी का नीर पड़ा है, सैकड़ों बार रीति ने भगवान् के सामने अपने नन्हें नन्हें हाथ जोड़कर

अपनी आंख ठीक करने की प्रार्थना की है—

परन्तु···

सात ऑपरेशन रीति की आंखों में हुए, दर्जनों शीशी दवाई पड़ चुकी है, उसकी आंखें में—

परन्तु···

कोई नया खिलौना आता है, तो सब बच्चे उससे खेलने लगते हैं। मगर रीति को अनेक प्रकार के कौतूहल होते हैं— वह कैसा खिलौना है ? क्या गुड़िया है ? गोरी है कि काली ? फ्रॉक पहने है कि साड़ी, रिबन लगाए है कि नहीं ?

उसकी आंखें नहीं साथ देतीं—सब कुछ अन्धकार से भरा हुआ····

दुर्भाग्य की क्या इच्छा है ? आज तक रीति ने अपने पापा, मम्मी और दादी का मुंह तक नहीं देखा, उनके शरीर के स्पर्श से कल्पना की है उनकी आकृति की।

इससे बढ़कर भी कोई क्रूर दण्ड हो सकता है—

कौन-सा अपराध था उसका, जो यह अभिशाप उसपर पड़ा है, कोई बताए····

यह सारा संसार क्यों उसके लिए वैसा नहीं है, जैसा दूसरों के लिए है ? गन्ध, ताप और स्पर्श—क्यों ये ही उसके सारे अनुभवों के आधार हैं। क्यों मनुष्य उसके लिए मात्र एक काली छाया है, घिनौनी, जो उससे घृणा करती है, उसपर हंसती है, और उसे बेधती है···

क्या अपराध है उसका, अन्धे होने में ! वह किससे पूछे ?

अपने सिर के बाल नोचकर वह इस प्रश्न का उत्तर चाहती है—इस संसार से, जो उसपर हंसता है, उस ईश्वर से, जो उसपर मौन साधे है…

छोटे-छोटे बच्चे, जिन्हें रीति ने कल ज़मीन पर पड़े हाथ-पैर मारते देखा था, आज किलक-किलककर इधर-उधर दौड़ रहे हैं, खेल रहे हैं। रीति असमर्थ भाव से कोने में खड़ी उन्हें ताक रही है, कौतूहल से, आश्चर्य से। अगर वह भी बेतहासा भागती है, तो तुरन्त गिरती या चोट खाती है। दूसरे बच्चे हंसते हैं, खिलखिलाते हैं रीति की असमर्थता पर। अपंग दुर्भाग्य उसकी फीकी आंखों में नर्तन करता है।…

यह सारे का सारा संसार रीति के लिए एक परछाईं-सा है, जिसमें हर चीज़ धुंधली-धुंधली है। आदमियों की भीड़ परछाइयों का जमघट मालूम होती है रीति को। उसके लिए आदमी नहीं चलते हैं, परछाइयां हिलती-डुलती हैं, आदमी नहीं बोलते-चालते हैं, शून्य में से गर्जना होती है…

रीति को ये सब कुछ मिलकर कोंचता है, ये कटु स्मृतियां, कटु वाक्य, कटु हास्य। लेकिन इस सबके बीच भी सहानुभूति की एक पतली-सी रेखा है, जिसे पकड़े वह शून्य में भूल रही है। यह सहानुभूति है उसके पापा की, उसकी मम्मी की, और उन दूसरे लोगों की, जो उसके ऊपर केवल इस कारण से नहीं हंसते, क्योंकि उसे दिखाई नहीं पड़ता! रीति को याद है कि आंखों का ऑपरेशन होने के बाद जब चिर-चिराहट भरी पीड़ा सुइयों की तरह उसके कुंचती थी, तब पापा उसे

गोद में लेकर बहुत धीरे-धीरे थपकियाते थे और रीति का धैर्य बंधने लगता था। लेकिन रीति जानती है कि ऐसे अवसर भी बहुधा आते हैं, जब यह सहानुभूति-सूत्र भी कंपित होने लगता है और तब रीति की वेदना जैसे सीमाएं तोड़ देती है....

दूसरे बच्चों के पिता उन्हें अक्सर पैसे देते हैं। वे पैसे हाथ में आते ही बेतहाशा भागते हैं, बाहर की तरफ—कभी मिठाई लेने के लिए और कभी खिलौने, गुब्बारे, लड्डू, बबुए, कंचे.... लेकिन रीति कभी-कभी उनकी देखा-देखी अगर पैसे मांगती है और पापा उसके हाथ पर रख देते हैं तो या तो कोई दूसरा बच्चा उससे छीन ले जाता है और या वह उसे हथेली में रखे घूरती रहती है, कसकर मुट्ठी में दबा लेती है और संतोष का अनुभव करती है, क्योंकि उसके हाथ में उस समय वह वस्तु होती है, जिसको पाने पर दूसरे बच्चे स्वर्ग मिल गया समझते हैं...

अब जब उसे मम्मी या पापा अपने पास न सुलाकर अलग छोटे-से खटोले पर लिटा देते हैं और उसे डर के मारे नींद नहीं आती है या नींद टूट जाती है तो वह रातों रोती है, उसका कलेजा कांपता रहता है, हर तरह की आवाज़ उसके लिए कौतूहलमिश्रित भय का तूफान खड़ा कर देती है, लेकिन वह चुपचाप पड़ी रोती रहती है, मौन रुदन... उसकी फीकी आंखें आंसुओं से भर जाती हैं, एक-एक बूंद आंसू मोती की तरह से उसके गालों पर झरता रहता है और रीति सुबकती रहती है, सुबकती रहती है...

रीति की विवश सीमाएं उसके हृदय को कचोटती हैं। उसकी

ज्योतिरहित आंखों ने उसे दूसरे माध्यमों से संसार का परिचय पाने को बाध्य कर दिया है, जिसमें सब कुछ अदृष्य है, भ्रम है। और रीति को प्रत्येक वस्तु के अस्तित्व का अनुभव उसकी गन्ध से होता है, उसके स्पर्श से होता है, उसके स्वर से होता है··· अन्यथा सब कुछ आकाररहित, प्राणरहित और शून्य···

गर्मियों की रातों को दूसरे बच्चे झुण्ड बनाकर छतों पर चढ़ते हैं और शोर मचाते हैं—'चन्दा मामा ! चन्दा मामा !!'

रीति कौतूहल से ताकती है, यह कौन-सा नया व्यक्ति आ गया है छत पर ? रीति का छोटा भैया उसकी सहायता करता है, वही भैया जिसे रीति ने घंटों खिलाया था, घंटों उसपर अपना स्नेह उंडेला था···

भइया आकर अपनी छोटी-छोटी हथेलियों से रीति की उंगली पकड़ लेता है और ऊपर आसमान में इशारा करता है—'वो देखो चन्दा मामा !'

रीति कौतूहल से ऊपर आसमान में ताकती है—

कुछ है, कुछ····धुंधला, टिमटिमाता-झिलमिलाता···

एक गुदगुदी लहर उसे लहरा जाती है, इतने बड़े रहस्य से परिचित होने पर। और वह उसी आवेश में दूसरे बच्चों का साथ देती है, गला फाड़कर—'चंदा मामा ! चंदा मामा !!'

कभी-कभी एक बड़ी गुर्राहट-सी आसमान में गूंजती है, जैसे कोई भालू तेज़ आवाज़ करता हुआ भाग रहा हो। उस वक्त रीति डरकर कमरे में ही रहना चाहती है, लेकिन दूसरे बच्चे छत पर जमा होकर चिल्लाते हैं—'हवाई जहाज ! चिट्ठी छोड़ो ! हवाई जहाज ! चिट्ठी

छोड़ो !!'

यह सारे का सारा भेद रीति की समझ में नहीं आता। लेकिन वह अपने आपको इस चीखते-चिल्लाते बाल-समूह से भी अलग नहीं रख पाती और उनके स्वर में स्वर मिलाने लगती है—'हवाई जहाज ! चिट्ठी छोड़ो !! हवाई जहाज ! चिट्ठी छोड़ो !!'

यह सारा संसार है एक रहस्यमय अंधकारपूर्ण शून्य के समान, जिसमें रीति उलझकर, भूलकर, भटककर रह जाती है, उसकी सीमाएं उसे भटकाती हैं, उसकी गांठें बढ़ती जाती हैं और उलझाव पैदा करती हैं। रीति अपने हृदय की संपूर्णता से मौन पुकार लगाती है—'ओ शून्य ! तुम क्या हो और क्या रहस्य है, तुम्हारा ?'

मगर उसे लगता है कि उसका मौन स्वर भी स्वयं उसकी तरह उस शून्य के रहस्य में भटककर रह जाता है···

रीति को लगता है कि वह एक नुमाइश है और उसे आदमीनुमा परछाइयां घेरे हुए खड़ी हैं···

रीति कौतूहल से उन्हें ताकती है और शून्य में खोकर रह जाती है।

और वे परछाइयां अट्टहास करने लगती हैं—उसपर, उसकी अंधी दृष्टि पर, रीति की भटकती अंधी दृष्टि पर···

०००